देवाधिदेव

अरिहंत-भक्ति



संशोधक

मुनिश्री भद्रगुप्तविजयजी

★

संग्रहकर्ता

शंकरलाल मुणोत

★



प्रकाशक —
श्री जैन साहित्य प्रसार समिति
मुणोत भवन, पीपलिया बाजार
ब्यावर



ज्ञान ध्यान-तपोमूर्ति प्रभावक प्रवचनकार पूज्य
पन्यास प्रवर श्री भानु विजयजी गणिवर के
कर कमलो मे
सादर समर्पण

— शंकरलाल मुणोत



प्रथमावृत्ति- १०००
वीर संवत् २४८६ विजय दशमी
मूल्य ५० न पै

मुद्रक —
कृष्णा आर्ट प्रेस,
ब्यावर

: विषयानुक्रमणिका ::



	पृष्ठ
१ देवाधिदेव अरिहंत-भक्ति का महत्त्व	१
२. द्रव्यस्तव	४
३ द्रव्य पूजा के प्रकार	५
४ पूजन विधि	६
५ नवांग पूजा	६
६ अग्रपूजा	१०
७ भावपूजा	१३
८ २४ मुख्य द्वार	१५
९ दशत्रिक	१५
१० पांच अभिगम	१७
११ चैत्य-वंदन विधि	२५
१२ चैत्य सम्बंधी मध्यम चालीस आशातना	३४
१३ गुरु-वंदनविधि	३६
१४ वंदन के ३२ दोष	३८
१५ गुरु प्रत्ये ३३ आशातना	४०
१६ देवद्रव्यादि की व्यवस्था	४३

प्रस्तावना

शास्त्रकारों ने धर्मरूपी प्रासाद के ऊपर आरोहण करने को प्रथम भूमिका रूप चार सीढ़ियां बतलाई हैं। उसमें सब से प्रथम सीढ़ी देवगुरु का पूजन, दूसरी सदाचार, तीसरी तप और चौथा मुक्त्यद्वेष मोक्ष के प्रति अप्रीति का अभाव बतलाया है। मुक्ति का अद्वितीय कारण भूत सम्यग्दर्शन देशविरति और सर्वविरति आदि धर्म की प्राप्ति के निकट लाने वाले तरीकों में इन चारों की शास्त्र में गणना की गई है। उसमें सब से प्रथम देवगुरु पूजन है। गुरु तरीके माता, पिता, कलाचार्य बड़े, वृद्ध, और धर्मशास्त्रों का उपदेश देने वालों को गिना है। देव १८ दोषों से रहित होते हैं। श्री हेमचन्द्राचार्य ने अभिधान चिंतामणि कोष में बतलाया है।

अन्तराया दानलाभ-वीर्य-भोगोपभोगगा।
हासो रत्यरती भीतिर्जुगुप्सा शोक एव च ॥१॥
कामो मिथ्यात्वमज्ञानं, निद्रा चाविरतिस्तथा।
रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्टादशाप्यमी ॥२॥

१ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ वीर्यान्तराय, ४ भोगान्तराय, ५ उपभोगान्तराय, ६ हास्य, ७ रति, ८ अरति, ६ भय, १० जुगुप्सा, ११ शोक, १२ काम, १३ मिथ्यात्व, १४ अज्ञान, १५ निद्रा, १६ अविरति, १७ राग, १८ द्वेष। यह १८ दोष श्री अरिहन्त देव के नहीं होते हैं। अरिहन्त देव बारह गुणों से युक्त होते हैं। (१) अशोकवृक्ष (२) मस्तक के ऊपर तीन छत्र (३) मस्तक के पीछे भामण्डल रहता है (४) दोनों तरफ चँवर डुलाते हैं (५) पुष्पों की वृष्टि देव करते हैं (६) दिव्य ध्वनि (७) दुन्दुभि देव बजाते हैं (८) स्वर्ण के सिंहासन पर विराजते हैं (६) वे अपायापगम नामक

अतिशय से युक्त होते हैं अर्थात् जहा २ विचरण करते हैं यह अतिवृष्टि अनावृष्टि, रोग, महामारी आदि अपायों (अनिष्टों) का नाश हो जाता है। (१०) वे ज्ञानातिशय वाले होते हैं। अतः समस्त विश्व का सम्पूर्ण स्वरूप जानते हैं (११) वे पूजातिशयवाले होते हैं अतः बलदेव वासुदेव, चक्रवर्ती इन्द्रादिक भी इनकी पूजा करते हैं (१२) वे वचनातिशयवाले होते हैं अतः उनके वचन का अभिप्राय देव मनुष्य और पशु भी समझ जाते हैं। उन देव और गुरु की पूजा से आत्मा के साथ लगे हुवे सहज कर्ममल न्यून होते हैं और इस कर्म मल के न्यून होने से आत्मा की सहज अनादि सिद्ध योग्यता उत्तमता का आविर्भाव होता है, उत्तमता प्रगट होने से सदाचार और तप का सामर्थ्य प्रगट होता है तथा सदाचार और तप के बल से मुक्ति, मुक्ति के साधनों और मुक्ति के साधक महापुरुषों के प्रति मात्सर्यनाश होता है इसके नाश होने से मुक्ति की ओर अनुराग प्रगट होता है और यह अनुराग अनुक्रम से सर्व कल्याण व आकर्षण का अवश्य कारण बनता है। देव और गुरु का पूजन इस रीति से उत्तरोत्तर कल्याणप्राप्ति का परम अंग बनता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस पूजन की पार्श्वभूमिका में गुणबहुमान का भाव होता है और गुणबहुमान का भाव चित्त का अति विशुद्ध आशय होने से कर्म निर्जरा का अमोघ साधन बनता है। अनादि भवचक्र में परिभ्रमण करते सर्व आत्मा प्रथम से शुद्ध नहीं होती किन्तु कर्ममल से व्याप्त होती हैं। इस दशा में सर्व आत्माओं ने कभी भी नहीं देखी हुई व अनुभव नहीं की हुई ऐसी मुक्ति, उसके साधन और साधक के प्रति अनुराग प्रगट होना असंभवित प्राय है। किंतु इन सब के प्रति मात्सर्य अरुचि और अप्रीति होना यह संभवित प्राय है। इस भांति मुक्ति के प्रति अनुराग का अभाव और अप्रीति का सद्भाव जब तक हो तब तक मुक्ति के लिये सदाचार का पालन, तप का सेवन न होना यह

सम्भवित है। यह न हो तब तक आने वाले नवीन कर्मों का रुकाव और प्राचीन कर्मों का क्षय नहीं होता तथा यह जब तक न हो वहां तक जीवका भवभ्रमण मिटके नहीं किन्तु अधिकाधिक वेग पूर्वक अनन्तकाल तक चलता रहता है यह कोई आश्चर्य नहीं। इन सब आपत्तियों का अंत लाने में सब से प्रथम और सब से सरलता पूर्वक आचरण कर सके ऐसा साधन कोई भी हो तो यह देवगुरु का पूजन होता है। उसमें भी देव की पूजा मुख्य है। इस पूजन करने में सदाचार का सर्वोत्कृष्ट पालन, तप का उत्कृष्ट सेवन तथा सदाचार और तप का सेवन करके उनका सर्वोत्कृष्ट फल मुक्ति प्राप्त करने का भार रहता है। शास्त्रकार पू. महोपाध्याय श्री मानविजयजी गणिवर श्री धर्मसंग्रह ग्रंथ में फरमाते हैं—

"जिन भवन जिन बिम्बं, जिनपूजा जिनमत च यः कुर्यात्
तस्य नरामरशिवसुख फलानि करपल्लवस्थानि"

जो जिन मंदिर, जिन बिम्ब प्रतिमा नई करावे, जिन पूजन करे और जिन भक्ति को आचरण में लावे उस मनुष्य के स्वर्ग और मोक्षसुख हथेली में है। समर्थ शास्त्रकार महर्षि हरिभद्रसूरि म० फरमाते हैं—

चैत्यवन्दनतः सम्यक् शुभो भाव प्रजायते।
तस्माद् कर्मक्षय : सर्वेन्तत कल्याणमश्नुते।

चैत्य अर्थात् जिन प्रासाद अथवा श्री जिन बिम्ब को सम्यक् प्रकार से वन्दन करने से प्रकृष्ट शुभ भाव उत्पन्न होते हैं। शुभ भाव से कर्म का क्षय होता है और कर्म के क्षय से सर्व कल्याण की प्राप्ति होती है।

आवश्यक निर्युक्ति में कहा है कि "भत्तीइ जिणवराण

खिज्जती पुत्र्वसंचिआ कम्मा जिनेश्वरों की भक्ति करने से पूर्व के अनेक भवों में संचित किये कर्मों का क्षय होता है।

आवश्यक टीका में भी पूर्व महर्षियों ने कहा है कि "भत्तीए जिणवराणं परमाए खीण-पिज्ज-दोसाणं। आरोग्गबोहिलाभं समाहिमरणं च पावेंति" जिनके राग और द्वेष क्षीण हुए हैं ऐसे जिनवरों की परम भक्ति करने से जीव आरोग्य बोधिलाभ और समाधिमरण को पाते हैं। यहां आरोग्य शब्द से जन्म और मरण अभाव समझना है। कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य म० ने चौवीश जिनों की स्तुति करते प्रारम्भ में ही बतलाया है कि—

नामाकृतिद्रव्यभावैः पुनतस्त्रिजगज्जनम्।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नर्हतः समुपास्महे ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव द्वारा सर्व क्षेत्र और सब काल में तीन जगत् के जीवों को पवित्र कर रहे अर्हन्तों की हम उपासना करते हैं। श्रीमद् हरिभद्रसूरीश्वरजी ने संबोध प्रकरण में देव के चार निक्षेपों के विषय में उल्लेख किया है, जिस वस्तु में जितने निक्षेप घटने का मालूम हो सके उस वस्तु में उतने निक्षेपा घटाने अगर जिसमें अधिक निक्षेपा घटाने की जानकारी न हो तो चार निक्षेपा तो अवश्य घटाना, जिनेश्वर भगवान का जो नाम है "नाम जिन" और जिन प्रतिमा वह "स्थापना जिन" जिनेन्द्र भगवान का जीव वह "द्रव्यजिन" समवसरण में बैठे हुवे वह "भावजिन" है। जिस वस्तु में भाव निक्षेपा सत्य होता है उस वस्तु का द्रव्यादिक चार निक्षेपा निश्चय शुद्ध होता है और अशुद्ध भाव निक्षेपा वाली वस्तु के चार निक्षेपा अशुद्ध होते हैं। इस कारण से शुद्ध योग का कारण होने से जिनेन्द्र प्रतिमा जिनेन्द्र समान है और जिनेन्द्र की पूजा करने जैसा फल प्राप्त कराती है। द्रव्य पूजा पहले और पीछे भी शुभ और स्थिर योग की अनुकूलता वाली ही कही है जैसे साधु के

आचार के विषय में होती हिंसा यह अहिंसा, यह अहिंसा पहले या बाद होती नहीं है अर्थात अहिंसा ही कायम रहती है, उसी प्रकार गृह व्योपार का त्याग करने रूप गुण से और सर्व स्थान पर मैत्री भाव से सम्यग्‌ दृष्टि जीवों की यह भी निश्चय भाव पूजा है। इस भांति संयत देश संयत और असंसयत इन तीनोंको भाव पूजा होती है। इस कारण से जिनेन्द्र पूजा में पहले या पीछे कहीं भी हिंसा भाव होत नहीं है। अध्यात्म योगशाली श्री जिनेन्द्र पूजा तो हमेशा कल्याणकारी है। महर्षि सूरिपुरंदर श्री हरिभद्रसूरि ने तीसरे पचाशक "चैत्य वंदन" की विधि में कहा है —

"एईउ परम सिद्धी जायइ जतो दढ तओ अहिगा।
नतम्मि नि अहिगरा, मच्चस्सोयाणुसारेण ॥

मन्त्रादि द्वारा सामान्य सिद्धियां प्राप्त होती हैं जबकि "चैत्यवंदन" द्वारा परम सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त होती है। इस बात का ध्यान रख कर भव्य जीवों को "चैत्यवंदन" में अत्याधिक प्रयत्न रखना चाहिये।

श्री वीतराग की भक्ति इस विषमय संसार में अमृत का कुंड है। जिसमें स्नान करने वाली आत्मा पाप-पंक से पावन हुए बिना रह नहीं सकती। श्री वीतराग की भक्ति रूपी अमृत के कुंड में निरंतर स्नान करने के लिये शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार के मार्ग बतलाये हैं। उनमें शास्त्रोक्त विधि पूर्वक देवाधिदेव का पूजन करना मुख्य है। आबाल वृद्ध सभी सरलता आसानी से आचरण कर सकें, ऐसा पवित्र धर्म कृत्य है। यह आत्मा के ऊपर लगे हुए कर्म मल धोने का एक प्रकार का आंतरिक स्नान है। वीतराग देव की भक्ति के लिये जैन शास्त्रों में जो विधि प्रदर्शित की हुई है उसे यत्किंचित्‌ समझाने के लिये इस पुस्तक द्वारा प्रयास किया है इस में अज्ञानता वश या प्रेस आदि के दोष से कोई भी अशुद्धि या त्रुटि रह गई हो

तो उसके लिये क्षमा २ प्रार्थी हूँ। इस ग्रंथ के तैयार करने का मुख्य लक्ष्य राजस्थान के ग्रामों के श्रद्धालु भव्य जीवों को श्री जिनेश्वर देव की पूजन विधि का पूर्ण परिचय कराना है। पू. मुनि श्री अभय सागरजी, पू पन्यासजी भानुविजयजी गणिवर के शिष्यरत्न श्री भद्रगुप्त विजयजी, श्री राजेन्द्रविजयजी ने संशोधनादि करने की महती कृपा की है। अरिहंत देव की पूजन विधि के साथ सम्मिल गुरु वन्दन विधि, देवद्रव्यादिक की व्यवस्था का शास्त्रीय मार्ग दर्शन बतलाया है। इस ग्रंथ के तैयार करने में पं तपागच्छीय श्री जगच्चंद्रसूरिजी के शिष्य देवेन्द्रसूरीश्वर रचित "भाष्यत्रयम" श्रीमानविजयजी गणिवर कृत "धर्म संग्रह" भाषान्तर, श्री रत्नशेखर सूरि विरचित "श्री श्राद्धविधि आदि शास्त्रों की सहायता प्राप्त की है।

भंवरलाल मुणोत
संग्रहकर्ता

ब्यावर (राज)



उद्‌बोधन

मनुष्य जैसे जैसे भौतिक पदार्थों में से सुख प्राप्त करने हेतु अधिक पुरुषार्थ करता है वैसे वैसे उसकी मानसिक अशान्ति बढती जाती है। आज के वैज्ञानिक युग में मानव को भौतिक सुख के साधन अधिक प्राप्त हैं उसी परिमाण में उसने अपनी मानसिक शांति को खो दिया है। आज का वैज्ञानिक युग चाहे जितने सुख के साधन उपलब्ध कर दें, किन्तु उससे उसकी मानसिक तृप्ति नहीं होती वरन् अतृप्ति के दावानल से प्रतिदिन और प्रतिपल जलता रहता है।

आज मानव ने भौतिक पदार्थों के पीछे अन्धे बनकर दौड़ना शुरु कर दिया है और अपने आचार विचार की उच्च भूमिका को खो दिया है। दिन प्रतिदिन वह नीच आचार एवं विचारों की भूमिका पर जा रहा है। परिणामतः उसके चित्त में अनेक प्रश्नों, सम समस्याओं एवं सन्तापों ने उथल पुथल मचा रखी है।

आज का अधिकांश मानव समाज मानसिक रोग से पीड़ित हो दुःखी हो रहा है। ऐसा मानसिक रोगों के चिकित्सा शास्त्रियों का मन्तव्य है। अमेरिका के एक प्रसिद्ध मानस रोग चिकित्सक ने अब तक लगभग दस से बारह हजार रोगियों की परीक्षा की, उनसे नाना विध प्रश्न पूछे, उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त की, निदान ढूंढा, और परिणाम में उन्हें मालूम पड़ा कि उनमें से अधिकांश रोगी ऐसे थे जो ईश्वर को नहीं मानते थे और उपासना मन्दिर में नहीं जाते थे।

उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि जो मनुष्य परमात्मा में श्रद्धा नहीं रखता, मन्दिर में नहीं जाता विशेषतः वे ही मनुष्य मानसिक अशांति एवं मानसिक रोगों के चंगुल में फंसे हैं। जो मनुष्य परमात्मा के प्रति श्रद्धालु है, प्रभु मन्दिर में दर्शनार्थ जाते हैं वे अधिकांश में अपने चित्त की स्वस्थता सुरक्षित रखते हैं और मानसिक रोगों से मुक्त होते हैं, और तत्पश्चात् वे डाक्टर भी प्रभु के प्रति श्रद्धावान एवं मन्दिर के उपासक बन।

Return to Religion नामक अंग्रेजी पुस्तक से यह घटना पढ़ने को मिली। भौतिक पदार्थों की इच्छा को मर्यादित रखने का तत्व जो मानव के पास न हो, तो उन असीम आकांक्षाओं में से ऐसा दारुण दावानल भभके कि उसी दावानल में मनुष्य स्वयं ही जलकर राख बन जाय। भौतिक पदार्थों की असीम आकांक्षाओं को मर्यादा में रखने वाला श्रेष्ठ तत्व यदि कोई है तो वह है परमात्म तत्व। परमात्म तत्व के प्रति श्रद्धावान मानव भौतिक सुखों की आकांक्षाओं को मर्यादित रख सकता है और उससे उसका चित्त स्वस्थ, शान्त और प्रसन्न बना रहता है। आज जितने अंशों में मानव ईश्वर के प्रति श्रद्धावान है उतने ही अंशों में वह मानसिक शान्ति का अनुभव करता देखा जाता है।

परमात्म तत्व पर श्रद्धालु मनुष्य भौतिक पदार्थों के प्राप्त्यर्थ मरा श में पुरुषार्थ नहीं करता ऐसा नहीं है उनके प्रति वह प्रयत्न ईश्वर के आदेशानुसार ही करता है और प्रभु आज्ञानुसार पुरुषार्थ करने का जो भी फल उसे प्राप्त होता है उसी से वह सन्तुष्ट हो जाता है। इससे उसका चित्त सदैव प्रसन्न एवं निरोग रहता है। तथा पुरुषार्थ करते उसे जो कुछ प्राप्त होता है 'यह प्रभु कृपा से ही प्राप्त हुआ है' ऐसा मानता है। इसीलिये ईश्वरादेशानुसार उसका त्याग करने में भी वह नहीं हिचकिचाता।

इस तरह चित्त की प्रसन्नता सुरक्षित रखने के लिए परमात्म तत्व पर अविचल श्रद्धा रखना अनिवार्य हो जाता है। तब प्रभु का स्मरण, दिन रात हर कार्य एवं प्रसंग पर करना भी उतना ही आवश्यक हो जाता है।

नाम-स्मरण हृदय पर अपूर्व प्रभाव डालता है। परन्तु वह नाम स्मरण पवित्र स्थल पर व पाप स्थानों से अलग होकर करने पर अधिक प्रभावोत्पादक होता है। जैसे क्षय रोगी को शुष्क वायुमंडल में औषधि विशेष लाभदायक होती है। इसलिये उसे स्निग्ध वायुमंडल से शुष्क वायुमंडल में स्थानान्तरित किया जाता है। यह आवश्यक समझा जाता है, उसी तरह भौतिक पदार्थों की आसक्ति के भयानक रोग से ग्रसित मनुष्य को भी ईश्वरोपासना रूपी औषध ही उस समय विशेष प्रभावोत्पादक होती है जब वह पवित्र स्थल पर रहे। परन्तु मानव के लिये चौबीसों घन्टे पवित्र स्थान में रहना असम्भव है। उसे सांसारिक रागरंगों एवं रागद्वेष पूरित प्रपंच मय क्षेत्र में अधिकांश समय व्यतीत करना पड़ता है। हमेशा पवित्र स्थल में तो वह तब ही रह सकता है जब वह भौतिक पदार्थों की आकांक्षा का सर्वथा त्याग करदे एवं त्यागी साधु बन जाय। जब तक वह सर्व त्यागमय साधु जीवन अंगीकार नहीं करता तब तक उसे हिंसा, झूठ, चोरी, दुराचार, परिग्रह आदि अनेक पापों का सेवन करना पड़ता है तब वह मर्यादा का उल्लंघन करके हिंसादि पापों का कर्त्ता न बन जाय इस हेतु प्रतिदिन ज्यादा से ज्यादा समय परमात्मा के सान्निध्य में व्यतीत करना चाहिये।

इस तरह मनुष्य परमात्मा के सान्निध्य में समय व्यतीत कर सके, उनके नाम का एवं गुणों का ध्यान कर सके इसी हेतु उसे प्रभु मन्दिर में जाना चाहिये। परमात्मा के नाम का स्मरण उन्हीं की

आकृति के सम्मुख किया जाता है तब मनुष्य का आत्मभाव विशेष उल्लसित होता है और उस परम तत्व के साथ गाढ़ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

मनुष्य को जिस पर प्रेम होता है, भक्ति वात्सल्य होता है उसका नाम जैसा प्रिय लगता है वैसे ही उसकी आकृति (प्रतिमा प्रतिकृति) भी प्रिय लगती है और नाम से भी आकृति ज्यादा प्रिय लगती है। अतः मनुष्य अपने श्रद्धेय की, प्रेमी की आकृति (चित्र) अपने घर में अपने पाकेट में रखते हैं, उसे देखकर सुख का संवेदन अनुभव करते हैं। उसी प्रमाण में प्रेमी के साथ का सम्बन्ध दृढ़तर होता जाता है।

परमात्मा ही जब श्रद्धेय बन जाते हैं तब उसका नाम जैसा प्रिय लगता है उसी तरह उनकी आकृति भी प्रिय लगेगी। जो उनकी आकृति प्रिय नहीं लगती तो प्रभु पर उनका प्रेम है श्रद्धा है यह कैसे माना जाय ? क्या जगत में कोई ऐसा प्राणी मिलेगा जिसे अपने प्रेमी का नाम अच्छा लगता हो और आकृति अच्छी नहीं लगती हो ? क्या कोई बिभत्स चित्र देखकर तुम्हारे हृदय में बुरे भाव नहीं पैदा होते ? क्या सिनेमा के परदे पर दीखते दृश्यों ने तुम्हारे हृदय में अच्छे व बुरे भावों को पैदा नहीं किया ? क्या किसी नगर मध्य में स्थापित किसी शहीद या देश नेता की मूर्ति ने खड़े रहने को विवश नहीं किया ? तुम्हारे हृदय में किन्हीं भावनाओं को उदित नहीं किया ?

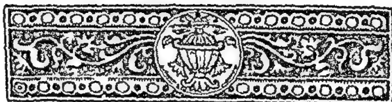
इसी तरह प्रभु मन्दिर में परमात्मा की प्रतिमा भी तुम्हारे हृदय में अवश्य ही पवित्र भावनाएँ प्रकट करेगी। मलिन, अपवित्र विचारों को नष्ट करेगी। प्रतिमा की वीतराग मुद्रा तुम्हारा भौतिक पदार्थों के प्रति अनुराग निर्मूल करेगी। विषयासक्ति कम कर उनके प्रति वैराग्य पैदा करेगी।

तुम्हारा हृदय प्रसन्नता अनुभव करेगा। क्रोध, मान, माया और लोभजनित दुःख का उपशम होगा। हिंसा, झूठ, चोरी, दुराचार तथा परिग्रह की कामनायें विराम लेंगी। अहिंसा सत्य, अचौर्य सदाचार और निष्परिग्रहता की सुगन्ध से तुम्हारी आत्मा महक उठेगी। तुम्हारा जीवन व्यवहार उन्नत भूमि का बनने लगेगा।

एक ही बात है। आप परमात्मा की ओर झुको। उनका नाम जपो। उनकी प्रतिमा की सेवा करो, उनकी तुम्हारे लिये जो आज्ञायें हैं उन्हें समझो। संसार का बाह्य सुख आपके पास हो या ना हो आपका चित्त अशान्त न बने, सन्ताप का अनुभव न करें, तो अवश्य आप दिन प्रतिदिन परमात्म तत्व के निकट पहुँचते जायेंगे।

जय वीतराग

ब्यावर (रा०) —मुनि भद्रगुप्त विजय



॥ ॐ ह्रीं अर्हं नम ॥

देवाधिदेव अरिहंत-भक्ति

सिद्धमरूयमणिंदियमणरज्जमच्चुयं वीर ।
पणमामि सयल तिहुयण-मत्थय-चूडामणिं सिरसा ॥

सिद्ध अरूपी अगोचर, अनवद्य-पवित्र, स्थिर स्वभाव वाला और समग्र तीन भुवन के मस्तक पे चूडामणि जैसे श्री महावीर स्वामी को मैं मस्तक द्वारा नमस्कार करता हूँ।

देवाधिदेव अरिहत-भक्ति का महत्त्व

श्री अर्हत् परमात्मा का पूजन शास्त्रकारों ने श्री राजप्रश्नीय व श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र आदि में—

"पुव्व पच्छा हियाए सुहाए खेमाए निस्सेयसाए आणु गामियत्ताए भविस्साइ"

अर्थात् पहले और पीछे हित का कारण, सुख का कारण, कल्याण का कारण, मोक्ष का कारण और भव भव में अनुगामी (साथ आने वाला) बतलाया है।

आवश्यक निर्युक्ति में कहा है कि—

"भत्तीइ जिणवराणं खिज्जंति पुव्वसंचिआ कम्मा"

अर्थात् जिनेश्वरों की भक्ति करने से पूर्व के अनेक भवों के संचित कर्मों का क्षय हो जाता है। शताधिक आचार्य श्री सोमप्रभसूरि म० ने सिन्दूर प्रकरण जिसे सूक्तिमुक्तावली के जिनपूजन प्रकरण में बतलाया है —

"पापं लुम्पति, दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदं
पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्णाति नीरोगताम्
सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः,
स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चार्हतां निर्मिता ॥"

अर्थ—जिनभगवान् की पूजा पाप का नाश करती है, दुर्गति का निवारण करती है आपत्तियों का नाश करती है पुण्य का संचय करती है, लक्ष्मी की वृद्धि करती है, आरोग्य को देती है, सौभाग्य प्राप्त कराती है, प्रीति को पल्लवित करती है, कीर्ति को फैलाती है और स्वर्ग और मोक्ष भी देती है। भगवान श्री सुधर्मास्वामी के ५२ वे पट्टधर आ० श्री रत्नेश्वरसूरि म० ने श्राद्धविधि में उल्लेख किया है —

"प्रातःकाल में की हुई जिनपूजा रात्रि में किये पाप का नाश करती है। मध्याह्न समय में की हुई पूजा जन्म से लेकर किये पाप का क्षय करती है और सन्ध्या समय में की हुई पूजा सात जन्म के किये पाप का निवारण करती है। जलपान, आहार औषध, निद्रा, विद्यासन देती यह सात चीजें अपने २ समय पर की हों तो अच्छा फल देती हैं। इसी प्रकार जिनपूजन भी अवसर (समय) पर किया हुआ सत्फल देता है। त्रिकाल जिनपूजन करने वाले भव्य जीव समकित

द्रव्यस्तव

श्री धर्मसंग्रह के रचयिता महोपाध्याय श्री मानविजयजी म० ने उल्लेख किया है —

"विहिसार चिय सेवइ, सद्धालू सत्तिमं अणुट्ठाण।
दव्वाइदोसनिहओवि पक्खवायं वहइ तंमि ॥

भावार्थ—श्रद्धालु शक्तिमान आत्मा जो २ अनुष्ठान (धर्मक्रिया) करे उसमें हर एक विधि बराबर करे। फिर भी कदाचित द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सामर्थ्य आदि सामग्री पूर्ण न हो, प्रतिकूलता हो तो भी उस क्रिया की विधि का पक्ष तो रखना ही चाहिए।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य म० योग शास्त्र में महा श्रावक की दिनचर्या बतलाते हैं—

स्तुति

"ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत् परमेष्ठिस्तुतिं पठन्।
किंधर्मा किं कुलश्चास्मि किं व्रतोऽस्मीति स्मरन् च—
शुचिः पुष्पामिषस्तोत्रैर्देवमभ्यर्च्य वेश्मनि।
प्रत्याख्यानं यथाशक्ति कृत्वा देवगृहं व्रजेत ॥
प्रविश्य विधिना तत्र त्रिः प्रदक्षिणयेज्जिनम्।
पुष्पादिभिस्तमभ्यर्च्य स्तवनैरुत्तमैः स्तुयात् ॥

भावार्थ—श्रावक पिछली दो घड़ी रात्रि रहे तब जागृत होकर पंच परमेष्ठि नवकार मंत्र की स्तुति कर याद करे कि 'मेरा क्या धर्म है? मेरा कुल कौनसा है? मैंने कौनसे व्रत अंगीकार किये हैं?

यह सब याद करे (पूजा के समय) पवित्र होकर पुष्प नैवेद्य और स्तोत्र (स्तुति) से गृहचैत्य में स्थापित देवाधिदेव की पूजा कर फिर शक्ति के अनुसार प्रत्याख्यान करके बड़े जिनभवन में (देवालय) विधिपूर्वक जाए। मंदिर में प्रवेश कर जिनेश्वरदेव के चारों तरफ तीन प्रदक्षिणा कर पुष्प आदि द्रव्यों से पूजा करके उत्तम स्तोत्रादि द्वारा भगवान की स्तुति करे।

:: द्रव्य पूजा के प्रकार ::

१४४४ ग्रन्थों के कर्ता महर्षि हरिभद्रसूरि म० ने सम्बोध प्रकरण में कहा है—

दुविहा जिणिदपूआ दव्वे भावे अ तत्थ दव्वम्मि ।
दव्वेहिं जिणपूआ, जिणआणा पालण भावे ॥

भावार्थ-द्रव्य पूजा और भावपूजा ऐसी दो प्रकार की श्री जिनपूजा है। उसमें पुष्पादि उत्तम द्रव्यों द्वारा जो की जाय वह द्रव्य-पूजा और श्री जिनेश्वरदेव की आज्ञा का पालन करना भाव-पूजा है।

श्री उमास्वाति वाचक ने, पूजाविधि, प्रकरण में पूजा के २१ प्रकार बतलाये हैं।

(१) स्नात्र (२) विलेपन (३) विभूषण (४) पुष्प (५) माला (६) धूप (७) दीप (८) फल (९) अक्षत (१०) पत्र (११) सुपारी (हथेली में रखने का फल) (१२) नैवेद्य (१३) जल (१४) वस्त्र (चदुआ पुठीया तोरण बाधना) (१५) चामर (१६) छत्र (१७) वाजिन्त्र (१८) गीत (१९) नाटक (नृत्य) (२०) स्तुति (स्तवन-स्तोत्र) (२१) भंडार भरना।

शक्रस्तव सूत्र की ललितविस्तरा नाम की टीका में (१) पुष्पों

से अग्र पूजा (२) आमिष नैवेद्य से अग्रपूजा (३) स्तुति से भावपूजा (४) जिनाज्ञा का सम्पूर्ण पालनरूप प्रतिपत्ति पूजा कही है।

अंगपूजा—श्री सुधर्मास्वामी के ५२ वें पट्टधर श्री रत्नशेखरसूरि ने "श्राद्धविधि" में जिनप्रतिमा का निर्माल्य (प्रतिमा के ऊपर के रात्रि के बासी पुष्प) उतारना मोरपींछी द्वारा पूंजना, प्रक्षालन करना, बालाकूंची से केसर प्रमुख द्रव्य उतारना, केशरादिक द्रव्यों से पूजा कर पुष्प चढाना, पंचामृत स्नात्र कराना, शुद्ध जल से अभिषेक करना, धूप दिये हुये शुद्ध कोमल वस्त्र से अंगलु छना, कपूर कुंकुम मिश्र किये हुए गोरोचन कस्तूरी द्रव्यों से तिलक आदि करना, सर्वोत्कृष्ट रत्नजडित सुवर्ण तथा मोती के आभरण और सोने रूपे के फूल चढ़ाना धूप करना आदि।

'श्राद्धदिनकृत्य' में कहा है कि—

"काउण विहिणाण्हाणं, सेयवत्थनियसणो।
मुहकोसतु काउण गिहबिंबाणि पमज्जए॥

भावार्थ—विधि पूर्वक स्नान करके पवित्र श्वेत वस्त्र धारण किये हैं जिसने ऐसा श्रावक मुख कोश बांध कर गृहमंदिर के बिम्बों का प्रमार्जन करे।

:: पूजन विधि ::

श्री जिनेश्वर देव की पूजा का समय सामान्य प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल बताया है। गृहस्थ प्रातःकाल त्रसजीव रहित समतल ठोस भूमि पर अचित्त जल से, अगर अचित्त जल नहीं हो तो छाने हुए सचित्त जल से विधिपूर्वक स्नान कर पवित्र श्वेत वस्त्र धारण कर मुखकोश उत्तरासन के आठ पट कर नाक व मुख पर समाधि रह इस भांति बांधे (अरिहंत देव की पूजा आदि कार्यों में जोड़ लगा हुआ

जला हुआ, फटा हुआ, वस्त्र त्याज्य है। जिस वस्त्र से झाड़ा निगाह मैथुन आदि किया हो वह वस्त्र देवपूजन म वर्जनीय है) पुरुषों को दो वस्त्र धोती तथा उत्तरासन बिना तथा स्त्रियों को तीन वस्त्र बिना देवपूजा आदि करना नहीं कल्पता है। पूजन के लिये शुद्ध धोया हुआ सफेद वस्त्र होना चाहिये। पूजा षोडशक म कहा है कि "सित शुभवस्त्रणत्ति इसकी टीका में उज्जवल के शुभ वस्त्र से ऐसा अर्थ किया है। शुभ अथात् सफेद सिवाय की अन्य उत्तम जाति का लाल, पीले रंग वाला समझना।

श्री जिनमंदर में आकर पांच अभिगम (मर्यादा) का पालन करे। (१) पुष्प, तंबोल आदि सचित्त वस्तु का त्याग (२) शरीर पर पहने हुए मुकुट के सिवाय अन्य आभरण अलंकार आदि अचित्त द्रव्या का त्याग न करे (३) उत्तम वस्त्र का उत्तरासण धारण करे (४) श्री जिनप्रतिमा के दर्शन होते ही दोनों हाथ जोड़कर ऊँचे मस्तक पे लगा 'नमोजिणाणं' बोले (५) श्री जिनेश्वर देव के दर्शन में मन की स्थिरता रखें।

पवित्रता पूर्वक जल, पुष्प इत्यादि वस्तु लाकर ओरसीया प्रमार्जन व पवित्र जल से शुद्ध कर केशर, बरास मिश्र किया हुआ चदन घिस, पात्र म भर, धूप, दीप, नैवेद्य, फल अक्षत अक्षत शुद्धजल, दूध आदि सब सामग्री इकट्ठी कर, अलग पात्र म रखकर लेकर अपने मस्तक पर तिलक कर, "निसीहि (मन वचन काया से संसारिक व्यापार का निषेध) कह कर जिनभवन म प्रवेश कर, श्री जिनेश्वर देव के दर्शन होते ही दोनों कर जोड़कर तथा मस्तक नमा कर "नमो जिणाण' कहते नमस्कार करे।

श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी ने सबोध प्रकरण में इस प्रकार कहा है—

"पवरेहिं साहणेहिं पाय भावो वि जायए पवरो।
न य अन्नो उवओगो एएसिं सयाण लट्ठयरो॥"

भावार्थ—पूजन की सामग्री उत्तम होने से जीव को भाव भी उत्तम होता है और मनुष्यों को (पुण्य के योग से प्राप्त हुई) अपनी सामग्री का जिनभक्ति में उपयोग (करने) के सिवाय ऐसा दूसरा कोई उत्तम उपयोग नहीं।"

तीन प्रदक्षिणा कर रंगमंडप में देवाधिदेव के सन्मुख पृथ्वी पर पंचांगी तीन प्रणाम (नमस्कार) विधिपूर्वक कर दूसरी "निसीहि" कहते हुए धोती की एक लांग खुली मुखकोश बांध पूजन सामग्री सहित मूल गंभारे में प्रवेश कर जिनेश्वर देव की प्रतिमाजी पर रात्रि में रहे हुए निर्माल्य को मोरपींछी से उतार कर जिनप्रासाद का प्रमार्जना करे अथवा दूसरों से करावे। प्रक्षाल का पानी निकलने की जगह पवित्र साफ पात्र रखकर श्री जिनेश्वरदेव की बायीं ओर धूप करना तथा दाहिनी ओर दीपक रखना चाहिए।

"सुरभिजलक्खयमीसं तु, काउं गंधोदगं वरं।
न्हवणं भुवणनाहे तु, पकुव्वेइ भत्तिसंजुओ॥

श्राद्धदिन कृ० गा० ५९

भावार्थ—भक्तिवंत श्रावक प्रमार्जन किये पीछे केसर, बरास तथा उत्तम औषधियों और चंदन आदि से मिश्रित कर, उत्तम सुगंधी पानी से त्रिभुवननाथ को स्नान करावे। प्रभुजी का दोनों हाथों द्वारा पवित्र पंचामृतमिश्रित जल कलश से अभिषेक (स्नात्र) कराते समय "हे स्वामिन्! चौसठ इन्द्रों ने बाल्यावस्था में मेरु पर्वत पर सुवर्णकलश से आपको यह स्नान कराया था उस समय जिसने आपके दर्शन किये वह जीव धन्य है," इत्यादिक मन में चिंतवन करना। इस बात का पूर्ण ध्यान रहे कि कलश जिनबिम्ब के किसी भाग का स्पर्श नहीं करे। फिर शुद्ध गीले वस्त्र से शेष रहा हुआ चंदनादिक उतार, फिर भी अगर ऐसी जगह जहां गीले वस्त्र

द्वारा चंदनादिक दूर नहीं हो सके वहां जयणापूर्वक हलके हाथों से वालाकूंची (खसकूंची) का प्रयोग कर चंदनादिक दूर करें, शुद्ध जल से प्रभु का अभिषेक करें। फिर धूप से धूपित श्वेत स्वच्छ अंगलूहणों से पहली बार प्रभु प्रतिमा पर रहा हुआ जल साफ करे, दूसरे कोमल अंगलूहन से बार बार जिन बिम्ब के सब अंगों को स्पर्श कर सर्वथा सूखा करे। इस प्रकार दो अंगलूहण से से सब प्रतिमाओं को निर्जल कर जहां २ थोड़ा भी गिलापन रहे वहां वहां तीसरा अंगलूहण करें। अंगलूहण कोमल, उत्तम, पानी को चूसे ऐसे, मैल रहित कपड़ से करे।

नवांग पूजा—केसर मिश्रित चंदनादि से प्रभु के नौ अंगों पर क्रमश (१) दो चरण के अंगूठे (२) दो जानु (ढीचण) (३) दो हाथ (४) दो कंधे (खभा) (५) मस्तक पर तिलक करे (६) उसी भांति प्रतिमाजी के ललाट (७) कंठ (८) हृदय कमल (९) नाभि पर तिलक करे। पूजा दाहिने चरण के अंगूठे से दाहिने हाथ की अनामिका (कनिष्ठा के पास वाली) अंगुली से क्रमश शुरू करे। पूजा कर सुगंधित पुष्पों से जिन प्रतिमा का पूजन करें।

पुष्प पूजा विधि—पुष्प बगीचे आदि उत्तम २ स्थान से माली अथवा बगीचे के रक्षक को संतोष हो इस भांति सम्पूर्ण मूल्य देकर स्वयं अथवा विश्वासपात्र पुरुष द्वारा मगाना चाहिये। वह भी पवित्र चंगेरिये या धातु के उत्तम पात्र में ऊपर पवित्र वस्त्र ढांक कर छाती जितनी ऊंचे दोनों हाथों म रखकर लाना चाहिये। पुष्प सूखे, जमीन पर पड़े हुए, टूटी पांखडी वाले, अशुभ या अपवित्र वस्तु से स्पर्श किये हुए, बिना खिले प्रभु पूजा में त्याज्य हैं। विशेष सामर्थ्य वाला रत्न सोने मोती के आभरणों से तथा स्वर्ण चांदी के पुष्पों से प्रभु को अलंकृत करे। चंदनादि पूजा इस भांति से करे कि प्रभु

के नेत्र मुख ढके नहीं। प्रभु की सुगन्धित चूर्ण द्वारा धूप पूजा करने बाद दीपक पूजा करे।

श्रा० दिनकृत्य गा० ४८ में कहा है—

> "कायकण्डूयणं वज्जे, तहा खेलविगिंचणं।
> थुइथुत्तभणणं चेव, पूयंतो जगबंधुणो॥

भावार्थ—जगतबंधु श्री जिनेश्वर देव की पूजा करते समय शरीर खुजलना, थूंक बलगम आदि निकालना तथा स्तुति स्तोत्र बोलना वर्जनीय है।

मन-वचन-काय-वस्त्र भूमि तथा पूजा की सामग्री की विशुद्धता और चित्त की निर्मलता व स्थिरता यह सात प्रकार का शुद्धि अरिहंत परमात्मा की पूजा के समय अवश्य रखे। प्रतिमा के प्रक्षाल के लिये लाये हुए पात्र में से जल लेकर हाथ अंगुलुंछण आदि नहीं धोना लेकिन दूसरे पात्र में रखे हुए शुद्ध जल से धोना अर्थात् जिन बिम्ब के बहुमान के हेतु एक ही जाति होते हुए भी चंदन जल आदि द्रव्यों को पूजा के लिये अलग रखे।

:: अग्र पूजा ::

> "गंधव्व-नट्ट-वाइअ-लवण जलारत्ति आई दीवाई।
> जं किच्चं तं सव्वं पि, ओअरई अग्गपूआए॥

(चैत्यवंदन भू० भा०)

भावार्थ—गायन करना, नृत्य करना, वाजित्र बजाना, लुण उतारना, आरती, दीपक उतारना, जो २ कार्य हैं वह अग्रपूजा में गिने जाते हैं।

विविध प्रकार के खाद्य, अक्षत, नैवेद्य, फल आदि भगवान के आगे (पाटपर) रखना तथा आरती, गायन नृत्य वाजित्र आदि सब अग्रपूजा है।

अंगपूजा की भांति अग्रपूजा के समय सुन्दर भावनायें पैदा होती हैं जिसका ख्याल पाठकों को नीचे के दोहों पर से हो सकता है।

दीपक पूजा समयः—

द्रव्यदीप सुविवेक थी, करता दुख होय फोक।
भावदीप प्रगट हुये, भासित लोकालोक॥

अक्षत पूजा समय —

शुद्ध अखंड अक्षत ग्रही नंद्यावर्त विशाल।
पुरी प्रभु सन्मुख रहो, टाली सकल जंजाल॥

यदि नंद्यावर्त साथियों की रचना न हो सके तो सामान्य स्वस्तिक पाट पर बना कर, उसके ऊपर, अक्षत की तीन ढगली कर, ऊपर चन्द्राकृति, उसमें एक बिन्दु की रचना करें।



अक्षत, नैवेद्य और फल चढ़ाते समय हर बार निम्न श्लोक बोलें—

"ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय परमात्मने श्री (मूल नायकजी का नाम) जिनेन्द्राय जन्मजरा मृत्यु निवारणाय अक्षत (नैवेद्य, फल) यजामहे स्वाहा

स्वस्तिक रचना कर भावना भाव कि यह जैसे चार पंखड़ी वाला है वैसे संसार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव चार गति वाला है। जैसे यह तीन ढुगलियां हैं वैसे मोक्ष मार्ग भी रत्नत्रयी स्वरूप है (सम्यग्दर्शनरूप, सम्यग्ज्ञानरूप और सम्यग्चारित्ररूप) इसका सहारा अवलंबन लेकर इस चंद्राकृति समान सिद्धशिला में पहुँच सकूं और उसमें रहे हुवे बिन्दु की भांति सिद्ध भगवान् जैसे निर्मल बनूं।

नैवेद्य पूजा समय —

अणाहारी पद मे कर्या, विग्गहगइय अनंत,
दूर करी ने दीजिये, अणाहारी शिवसंत।

एक भव से दूसरे भव में जाने की क्रिया में जो मोड़ पड़ता है इसे विग्रहगति कहते हैं। ऐसी अनंत विग्रहगति करते अनंतबार मैं अनाहारी रहा परन्तु उसे अनाहारी अवस्था का कोई मूल्य नहीं। मोक्ष में विराजने वाले हे प्रभु! मेरी यह स्थिति दूर कर मुझे सच्चा अनाहारी पद–मोक्षपद प्रदान कर।

फल पूजा समय —

इंद्रादिक पूजा भणी, फल लावे धरी राग,
पुरुषोत्तम पूजा करी, मागे शिवफल त्याग।

इन्द्र आदि देव प्रभु की पूजा करने के लिये प्रेमपूर्वक फल लाते हैं और पुरुषोत्तम अर्हंतों की पूजा कर, जिसका फल शिवसुख है ऐसा त्याग मांगते हैं। इसलिये मैं भी फलपूजा से परिणाम शिवफल प्राप्ति कराने वाला त्याग मांगता हूँ। इससे संसार सम्बंधी सब कामनाओं का निषेध हो जाता है।

:: भावपूजा ::

"विग्घोवसामिगेगा अब्भुदयसाहणी भवे बीआ।
निव्वुइकरणी तइया, फलया उ जहत्थनामेहिं।
(संबोध प्र० देवाधि गा० १६४)

भावार्थ—अपने यथार्थ नाम प्रमाण (अनुसार) पहेली अंगपूजा विघ्नों को शान्त करने वाली है दूसरी अग्रपूजा अभ्युदय साधने वाली है और तीसरी भावपूजा मोक्षफल देने वाली है।

श्री जिनेश्वरदेव की अंग अग्रपूजा से निवृत्त होकर तीसरी निसीही पूर्वक आशातना टालने के उद्देश्य से कम से कम जघन्य श्री जिनप्रतिमा से नव हाथ, इतनी जगह न हो तो कम से कम आधा हाथ दूर, उत्कृष्ट साठ हाथ दूर बैठकर पुरुष श्री जिनेश्वरदेव के दाहिनी (जीमणे) तरफ तथा स्त्रियां बाएं तरफ बैठकर चैत्यवन्दन रूप भावपूजा करें।

भावपूजा का महत्त्व —

समर्थ शास्त्रकार महर्षि आ० श्री हरिभद्रसूरिजी ने कहा है—

चैत्यवन्दनतः सम्यक् शुभो भावः प्रजायते।
तस्मात् कर्मक्षयः सर्वं ततः कल्याणमश्नुते॥

भावार्थ—चैत्य अर्थात् श्री जिनमंदिर अथवा श्री जिन बिम्ब को सम्यग् रीति से वन्दन करने से प्रकृष्ट शुभभाव पैदा होते हैं। शुभभाव से कर्म का क्षय होता है और कर्म के क्षय से सर्व कल्याण की प्राप्ति होती है।

श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी ने संबोध प्रकरण में जिन चैत्यवंदन विधि बतलाते शुद्धवंदन फल के विषय में उल्लेख किया है कि—

वदन से जीव को अर्धपुद्गलपरावर्तन से अधिक ससार भ्रमण रहता ही नहीं ऐसा जिनआगम में स्पष्ट बतलाया है।

प्रणाम के पाच प्रकार'—

(१) मात्र एक मस्तक नमाकर जो प्रणाम होता है एक अगी (२) दो हाथ जोड़कर दो अगी (३) दो हाथ जोड़ मस्तक नमाने से तीन अंगी, (४) दो हाथ तथा दो घीचरण इस तरह चार अंग नमाने से चार अंगी, (५) दो हाथ दो घुटन तथा मस्तक शरीर के पाचों अवयवों नमाने से पंचागी प्रणाम कहा जाता है।

उपा० श्री मानविजयजी ने "धर्मसग्रह" में कहा है—

सुपभाए समणोवासगस्स पाणंपि न कप्पई पाउ ।
नो जाव चेइआइ, साहुंनि अ वंदिया विहिणा ॥१॥

मज्झण्हे पुणरवि वंदिउण नियमेण कप्पई भोत्तु ।
पुण वंदिअण ताइ पओसमसमयमितोसुअई ॥२॥

भावार्थ—श्रावक को प्रातःकाल जब तक श्री जिनमदिर में जिनेश्वरदेव और गुरु महाराज को वंदन न किया हो तब तक पानी भी पीना नहीं कल्पता। मध्याह्न में उनको फिर पूजन-वंदन कर भोजन करना कल्पता है और सायंकाल में पुनः उनको वदनादि करके शयन करें।

चैत्यवदन भाष्यादि में विधिपूर्वक चैत्यवंदन के मुख्य २४ द्वार बतलाये हैं।

नोट—जिन बिम्ब के मस्तक लगा कर वंदन नहीं करना चाहिये।

२४ मुख्य द्वार

(१) दशत्रिक (२) पांच अभिगम (३) दो दिशायें (४) तीन प्रकार के अवग्रह (५) तीन प्रकार की वंदना (६) प्रणिपात (७) नमस्कार (८) १६४७ अक्षर (९) १८१ पद (१०) ९७ संपदा (११) पांच दंडक (१२) १२ अधिकार (१३) चार वंदनीय (१४) स्मरण करने योग्य (१५) चार प्रकार के जिनेश्वर भगवान (१६) चार स्तुति (१७) आठ निमित्त (१८) १२ हेतु (१९) १६ आगार (२०) १९ कायोत्सर्ग के दोष (२१) एक काउस्सग्ग का प्रमाण (२२) १ स्तवन (२३) ७ चैत्यवन्दन (२४) दश आशातनाओं का त्याग ३ निसीहि ३ दिशि निरीक्षण १९ कायोत्सर्ग के दोष और १० आशातनाओं का त्याग यह ३५ बोल त्याग करने योग्य हैं बाकी के २०३९ बोल आचरणे योग्य हैं।

१ दशत्रिक

तीन निसीही —(१) जिन मन्दिर के मुख्य द्वार से प्रवेश करते समय। (२) द्रव्य पूजा करने जाते समय मंदिर के मध्य में कहना। (३) द्रव्य पूजा करने के पश्चात् चैत्यवंदन करने के पहले निसीही कहना चाहिये।

(२) तीन प्रदक्षिणा—परमात्मा के मूल गंभारे (मुख्यप्रासाद) के चारों तरफ ३ प्रदक्षिणा पद्धति से भ्रमण करना प्रदक्षिणात्रिक कहलाता है।

(३) प्रणामत्रिक—(१) दो हाथ जोड़ कर मस्तक के सन्मुख रखना अंजलिबद्ध प्रणाम (स्त्रियों को अंजलिबद्ध प्रणाम करते समय हाथ ऊंचा कर मस्तक के नहीं लगाना परन्तु यथास्थान पर रख के प्रणाम करना) (२) दो हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाकर कटि को नमाना

अर्धावनत प्रणाम (३) दो हाथ, दो घुटने और मस्तक इन पांचों अंग से भूमि स्पर्श कर प्रणाम किया जावे। पंचांग प्रणिपात कहलाता है।

(४) पूजात्रिक—(तीन प्रकार की पूजा) (१) अंग पूजा (२) अग्र पूजा और (३) भाव पूजा।

(५) अवस्थात्रिक—(१) छद्मस्थ (जन्म राज्य, श्रमण अवस्था) (२) तीर्थङ्कर केवली अवस्था और (३) सिद्ध अवस्था।

(६) त्रिदिशि निरीक्षण त्यागत्रिक—चैत्य वदन करते समय अपनी दृष्टि प्रभुजी के प्रतिमाजी के सन्मुख स्थिर करना अन्य तीनों दिशाओं की तरफ देखना त्याग करना अर्थात् दायीं बायीं और पीछे दिशाओं की तरफ नहीं देखना।

(७) भूमिप्रमार्जनात्रिक—तीन बार जहां चैत्य वदन करना हो उस भूमि को उत्तरासग द्वारा अथवा चरवला से प्रमार्जन करना।

(८) वर्णादि आलंबनत्रिक—(१) सूत्रालंबन चैत्य-वंदन सूत्र के अक्षर स्पष्ट और शुद्ध ध्यानपूर्वक बोलना (२) अर्थालंबन अपने ज्ञान के अनुसार विचारना (३) प्रतिमालंबन

(९) मुद्रात्रिक—(१) दो हाथ की दस अंगुलिया एक दूसरे के बीच रख कर कमल के डोडे के आकार हथेलियों का आकार कर, हाथों की दोनों कोनिया पेट ऊपर स्थापित कर हाथों को नमाये मस्तक से कुछ दूर रखकर जो मुद्रा बैठ या खड़े की जाती है योगमुद्रा है। (२) काउस्सग्ग आदि में खड़े रहते समय भूमि पर दोनों पैरों का अन्तर अगले भाग में ४ अंगुल का पीछे के भाग में कुछ कम

नोट—प्रथम निसीहि— गृह व्यापार का त्याग
द्वितीय निसीहि—जिनगृह विषयक व्यापार का त्याग
तृतीय निसीहि —द्रव्य पूजा का त्याग

अनंतर रख खड़े हुवे हाथ दोनों लम्बा कर जो मुद्रा की जाती, जिनमुद्रा कहलाती है। (३) दोनों हाथ मोती के छीप के आकार कर ललाट के सन्मुख ऊंचा रखना मुक्ता शुक्ति मुद्रा कहलाती है।

१० प्रणिधानत्रिक—(१) "जावंति चेइयाइं" सूत्र में तीनों लोक में रहे हुए चैत्या को नमस्कार होने से चैत्यवंदन सूत्र कहलाता है। (२) "जावंत केवि साहु" सूत्र में अढ़ी द्वीप में रहे हुवे सर्व साधुओं को नमस्कार होने से मुनिवंदन सूत्र कहलाता है (३) "जयवीयराय" सूत्र में भव से वैराग्य[1], मार्गानुसारित्व[2], इष्टफल की सिद्धि[3], लोक विरुद्ध का त्याग[4] गुरुजनों की पूजा[5], परोपकार करण[6], सद्गुरु का योग[7] और[8] भव पर्यन्त उन सद्गुरु के वचनों की सेवा और भवोभव प्रभु के चरणों की सेवा[9] यह नौ वस्तु प्रभु से माग की चाह से प्रार्थना सूत्र कहलाता है।

२ पांच अभिगम

स-चित्त दव्वमुज्झणम चित्तमणुज्झणं मणेगत्त।
इग साडि-उत्तरासगु अजली सिरसि जिण दिट्ठे।

भाष्यत्रयम्

भावार्थ—(१) सचित्त वस्तुओं को छोड़ देना (२) अचित्त वस्तु रखना (३) मन की एकाग्रता (४) एक अखंड दुपट्टा-खेस उत्तरासग रखना (५) जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन होने के साथ अंजली पूर्वक मस्तक नमन कर प्रणाम करना, यह पांचों अभिगम जिनेश्वर प्रभु के चैत्य में प्रवेश समय आचरण में लाने के है। यह अभिगम श्रावक को दृष्टि में रखते हुए कहे हैं।

विशेष ऋद्धि वाले राजादि (१) तलवार (२) छत्र (३) मोजड़ी (जूते) (४) मुकुट (५) चामर यह पांच राज्य चिह्न बाहर छोड़ चैत्य में प्रवेश करे।

३ दोदिगिस्थिति

श्री परमात्मा के दाहिनी (निमणी बाजु) तरफ पुरुष बायीं तरफ स्त्रियां रह कर प्रभु का दर्शन पूजन वंदन करे।

४ तीन प्रकार के अवग्रह

देवगृह अगर छोटा हो तो ६ हाथ न्यून अवग्रह उत्कृष्ट साठ हाथ, शेष मध्य अवग्रह रख श्री परमात्मा का चैत्यवंदन, दर्शन करना चाहिए। प्रभु को अपना उच्छ्वासादि स्पर्श न करे इस प्रकार वर्तन करना चाहिए।

५ तीन प्रकार का चैत्य वंदन

(१) नमस्कार (अर्धांजलिबद्ध प्रणाम) द्वारा जघन्य (२) दंडक (नमुत्थुणं आदिक) और स्तुतियुगल द्वारा मध्यम (३) पांच दंडक चार स्तुति स्तवन और प्रणिधाना द्वारा उत्कृष्ट चैत्यवंदन होता है। अन्य आचार्य भगवंतों का फरमाना है कि एक नमुत्थुणं द्वारा जघन्य, दो या तीन द्वारा मध्यम और चार या पांच द्वारा उत्कृष्ट चैत्य वंदन होता है।

६ प्रणिपात

दो हाथ, दो घुटने और मस्तक इन पांचों अंगों को भूमि स्पर्श करके जो प्रणाम किया जाता है। वह प्रणिपात कहलाता है।

नोट—(१) उत्तरासंग रखने की विधि अंगपूजा तथा उत्कृष्ट चैत्यवंदन करने वाले के लिये है फिर भी दूसरे पुरुष सिर पर पगड़ी या टोपी तथा उत्तरासंग सहित ही प्रभु के पास जावे।

(२) स्त्रीयां अंजली जोड़ मस्तक नमन करे लेकिन अंजली साथ हाथ ऊंचे कर मस्तक से नहीं लगावे।

८-९-१० द्वारों का यंत्र (चार्ट)

सूत्र का नाम	सूत्र का गौणनाम		पद संख्या	संपदा	गुरु अक्षर	लघु अक्षर	सर्व अक्षर
१ नवकार	पंच मंगल श्रुत स्कंध		९	८	७	६१	६८
इच्छामि खमासमणो	प्रणिपात सूत्र वा छोभ सूत्र		०	०	३	२५	२८
इरियावहियं (तस्सउत्तरी सहित)	प्रतिक्रमण श्रुत स्कंध		३२	८	२४	१७५	१९९
नमुत्थुणं	शक्रस्तव वा प्रणिपात दंडक		३३	९	३३	२६४	२९७
अरिहंत चेइयाणं (अन्नत्थ सहित)	चैत्य स्तव कायोत्सर्ग दंडक		४३	८	२९	२००	२२९
लोगस्स	नामस्तव		२८	२८	२८	२३२	२६०
पुक्खरवर	श्रुतस्तव		१६	१६	३४	१८२	२१६
सिद्धाणं बुद्धाणं	सिद्धस्तव		२०	२०	३१	१६७	१९८
जावंति चेइयाई	चैत्यवंदन सूत्र	प्रणिधानत्रिक	०	०	३ (१२)	३२ (१२०)	३५ (१५२)
जावंत केवि साहू	मुनिवंदन सूत्र		०	०	१	१७	३८
जयवीयराय पहली दो गाथा	प्रार्थना सूत्र		०	०	८	७१	७९

७ नमस्कार द्वार

एक से १०८ तक नमस्कार रूप श्लोक वीतराग प्रभु के गुणों की प्रशंसा रूप गभीर और विशाल अर्थवाला नमस्कार कहलाता है।

८: १६४७ अक्षर

नवकार, खमासमण, इरियावहिया, शक्रस्तव आदि दंडकों में और प्रणिधानों आदि में कुल मिलाकर १६४७ अक्षर हैं जो चार्ट में दिये हैं।

९. १८१ पद

सकल ईरियावहिया, शक्रस्तवादि में नव, बत्तीस, तंतीस ब्यालीस, अट्ठावीस सोला, बीस एक सौ इक्यासी पद हैं जो चार्ट में दिये हैं।

१०. ९७ संपदा (विश्राम)

नवकार, ईरियावहिया, अरिहंतचेईयाणं लोगस्स, पुक्खरवर सिद्धाणं बुद्धाणं में आठ, आठ, नव, आठ, अट्ठाइस, सोला और बीस कुल सत्ताणु संपदाएँ है (संपदा अर्थात् महापद अथवा विश्राम।)

११ पांच दंडक

शक्रस्तव, चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रुतस्तव और सिद्धस्तव यह पांच दंडक हैं। इनमें २-१-२-२-५ इस भांति १२ अधिकार हैं।

१२ पांच दंडक के चैत्यवंदन में १२ अधिकार

पांच दंडक के १२ अधिकार — [1]नमुत्थुणं-जेय (अ) अईया,[2] सिद्धा,[3] अरिहंत चेइयाणं, लोगस्स[4] सव्वलोए[5] अरिहंतचेइयाणं,[6] पुक्खरवरदीवड्ढे तमतिमिर,[7] पडल विद्ध सिद्धाणं,[8] बुद्धाणं जो[9] देवाणविदेवो,[10] उज्जित सेलसिहरे,[11]

चत्तारिअट्ठ दस दोय,वेयावच्चगराणं,[१२] यह बारह अधिकार के १२ प्रथम पद हैं। प्रथम अधिकार में भावजिनकी[1] दूसरे अधिकार में द्रव्यजिनकी[2], तीसरे अधिकार में एक चैत्य में स्थापना जिनकी[3] सर्व जिन प्रतिमाओं और चौथे अधिकार में नाम जिनकी वंदना की गई है। पांच में अधिकार में तीन भुवन के स्थापना जिन की वंदना की गई, छट्ठे अधिकार में विहरमान जिनेश्वरों को वंदना की है। सातवें अधिकार में श्रुतज्ञान की वंदना की है। आठवें अधिकार में सर्वसिद्धों की स्तुति है। नवमें अधिकार में वर्तमान तीर्थ के अधिपति श्री वीरजिनेश्वर की स्तुति है, दशवें अधिकार में गिरनार की स्तुति है ग्यारहवें अधिकार में अष्टापद आदि तीर्थों की स्तुति है और बारहवें अधिकार में सम्यग्दृष्टि देव का स्मरण है।

१३ वन्दन करने योग्य

चार वंदनीय—

(१) श्री जिनेश्वर भगवंत, (२) मुनिमहाराज, (३) श्रुतज्ञान (४) सिद्धपरमात्मा।

१४ स्मरण करने लायक

शासनदेव।

---

१ भावजिन अर्थात् तीर्थङ्कर नाम कर्म के विपाकोदयवाला केवल ज्ञानी तीर्थङ्कर भगवंत जब समोसरण में विराज कर देशना देते हैं। (२) द्रव्यजिन अर्थात् पूर्व के तीसरे भव में निकाचित तीर्थङ्कर नामकर्म बांधा परन्तु अभी तक केवल ज्ञान पूर्वक भाव अरिहंत पन प्राप्त नहीं किया हो। सिद्धावस्थावाले भी द्रव्य जिन कहलाते हैं। अर्थात् भाव जिन की पूर्व अवस्था तथा पीछे की अवस्था द्रव्य जिन कहलाता है। (३) जिनप्रतिमाएँ।

१५ चार प्रकार के जिनेश्वर

नाम जिणा-जिण नामा ठवणा जिणपुण जिणिंदपडिमाओ।
दव्व-जिणा जिण-जीवा भाव जिणा समवसरणत्था ॥
(भाष्यत्रयम्)

भावार्थ नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चार प्रकार के श्री जिनेश्वर हैं।

नाम से जिनेश्वरों के नाम, स्थापना से जिनेश्वरों की प्रतिमाएँ द्रव्य से जिनेश्वरों के जीव और भाव से समवसरणस्थ भगवंत।

१६ चार चूलिका स्तुति

अधिकृत मुख्य = (मूलनायक जिनेश्वर) जिनकी पहली, सर्व जिनकी दूसरी, ज्ञान की तीसरी तथा वेयावच्च करने वाले देवों की उपयोग के लिये चौथी स्तुति है।

१७ आठ निमित्त

पाप खपाने के लिये इरियावहिय प्रतिक्रमण का, वंदण वत्तिया वगैरह ६ निमित्तों और शासनदेव के स्मरण के हेतु काउस्सग्ग करना इस भांति आठ निमित्त हैं।

१८ कायोत्सर्ग करने के बारह कारण (हेतु-साधन)

"तस्स उत्तरीकरणं" वगैरह चार 'श्रद्धा' वगैरह पांच और वेयावच्चं गराणं आदि तीन इस भांति बारह कारण साधन हैं।

१९ बारह अथवा सोलह आगार

अन्नत्थ ऊससिएणं से प्रारम्भ कर दिट्ठि संचालेहिं तक बारह आगार इस प्रकार हैं —

(१) श्वास लेना, (२) श्वास छोड़ना, (३) खांसी, (४) छींक, (५) जम्हाई आना (६) ऊर्ध्ववायु (डकार आना), (७) वायुसरना (अधोवायु) (८) चक्कर आना, (९) वमन (पित्तका उमरना), (१०) सूक्ष्म कायकंप, (११) सूक्ष्म श्लेष्म संचार, (१२) सूक्ष्म दृष्टिसंचार (हिलाना) बारह आगार एक स्थान पर खड़े रहने के आश्रय (अपेक्षा) से कहे हैं। परन्तु काउसग्ग के नियत स्थान से हट कर दूसरे स्थान पर जाने पर भी कायोत्सर्ग अखंड गिना जावे इसके चार आगार मुख्य हैं—(१) दीपक बिजली आदि का प्रकाश शरीर पर पड़ने से जीवों के शरीर स्पर्शादि से नाश होने से बचाने के लिये अप्रकाश स्थान पर जाना पड़े (२) स्थापना और अपने बीच चूहे आदि पंचेन्द्रिय जानवर आडे निकलते हो, आड़ निवारण के लिये (३) पंचेन्द्रिय जीव की कोई घात करता हो तो अन्य स्थान हटना पड़े, (४) खुद को अथवा साधु आदि को सर्पादिक ने दंश करने की संभावना से दूसरे स्थान पर हटना पड़े।

२० कायोत्सर्ग के १९ दोष

(१) घोटक दोष—घोड़ा घोडी के समान पैर वांके या ऊँचे रखना।
(२) लतादोष—लता की भांति शरीर कपाना।
(३) स्तंभ कुड्यदोष—स्तंभ या दीवार का सहारा लेना।
(४) मालादोष—छत से मस्तक लगा खड़े रहना।
(५) उद्धिकादोष—आगे से या पीछे से दोनों पैर मिलाकर खड़े रहना।
(६) निगडितदोष—बेड़ी पड़े हुए की भांति दोनों पैर पोले रखना या शामिल रख कर खड़े रहना।
(७) शबरीदोष—भीलनी की भांति दोनों हाथ गुह्य भाग के सामने रख खड़े रहना।
(८) खलिनदोष—घोड़े की लगाम की तरह चरवला ओघा का गुच्छा आगे और डंडी पीछे रख पकड़ना।

(९) वधूदोष—वधू की तरह मस्तक नीचे रख कर काउस्सग्ग में खड़ा रहना।

(१०) लंबुत्तरदोष—साधु के चोलपट्टा नाभि से चार अंगुल नीचे और घोंटन से चार अंगुल ऊपर रखना चाहिए इससे ज्यादा नीचे अथवा ऊँचा रखना।

(११) स्तनदोष—स्त्री के माफिक छाती के ऊपर (हृदय) कपड़ा ढांक कर काउस्सग्ग करना।

(१२) संयतीदोष—साध्वीजी के माफिक मस्तक के अतिरिक्त समस्त शरीर को वस्त्र से ढकना।

(१३) अंगुली भृदोष—नवकारादिक गिनते समय अंगुलिया नेत्र के भवें जैसे तैसे फिराना।

(१४) वायसदोष—कौवा भांति आंख के डोले इधर उधर घुमाना।

(१५) कपित्थदोष—कपड़े मैले होने के भय से धोती की पटली के गोल ढूंचा कर दोनों पैरों के बीच रखना।

(१६) शिर कम्पदोष—शिर हिलाये करना।

(१७) मूकदोष—मूंगे की माफिक हूँ हूँ आवाज करना।

(१८) वारुणीदोष—वारुणी शराब उछलते बुड़बुड़ आवाज के समान बुड़ बुड़ करना।

(१९) वंदरदोष—वंदर की भांति ऊँचे नीचे होकर देखा करना।

२१ काउस्सग्ग के समय का माप

चैत्यवंदन में इरियावहिय के काउस्सग्ग का प्रमाण पच्चीस श्वासोच्छ्वास समय गिनना है और शेष को आठ है।

२२ स्तवन के गुण

गंभीर आशयवाला, मधुर शब्दों वाला महान् अर्थ वाला होना चाहिये। विशेषतः पूर्वाचार्य रचित कहना।

२३ सात चैत्यवंदन

प्रतिक्रमण करने वाले गृहस्थ को भी सात अथवा पांच बार चैत्यवंदन करना चाहिये। प्रतिक्रमण नहीं करने वाले को जघन्य से तीन दफा चैत्यवंदन करना चाहिये।

२४ दश मुख्य आशातना

तंबोल पाण भोयण, वाणह मेहुन सुअण निट्ठवणं।
मुत्तु च्चार जूअं, वज्जे जिण-नाह जगईए॥

भावार्थ श्री जिनेश्वर भगवंत के मंदिर के अहाते (किले) में पान सुपारी खाना, पानी पीना, भोजन करना, जूते पहने रखना, मैथुन करना (स्त्री का संग करना), शयन करना, थूकना, पेशाब करना, टट्टी करना, जुआ खेलना वर्जनीय है। यह दश आशातना जघन्य है मध्यम ४२ और उत्कृष्ट ८४ है।

चैत्य-वंदन विधि

जिस जगह बैठकर चैत्य-वंदन करना हो उस भूमि, को पहले नेत्रों से देख चरवले अथवा उत्तरासण से भूमि प्रमाजन करते हुवे उत्तरासण धारण किये प्रभु सन्मुख दृष्टि रखते हुवे एक खमासमण देकर आदेश पूर्वक इरियावहिय, तस्स उत्तरी, अन्नत्थ, कह एक लोगस्स का २५ उच्छवास प्रमाण काउस्सग्ग (चंदेसुनिम्मलयरा तक) कर प्रगट लोगस्स कहना, फिर "इच्छामि खमासमणो वन्दिउं-जावणि ज्जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि' इस तरह कहते तीन पंचांगी खमासमणा देकर बाया घुटना खड़ा रखकर उत्तरासण डालकर दोनों हाथ जोड़ (योग मुद्रा कर) चैत्य-वन्दन करने का आदेश मांगा जाता है। इच्छाकारेण-संदिसह भगवन्! चैत्य वंदन करूं। इच्छं कह कर चैत्य-वंदन के नीचे के पद्य बोले—

सकलकुशलवल्ली-पुष्करावर्तमेघो, दुरिततिमिरभानु कल्प-वृक्षोपमान भवजलनिधिपोत सर्वसम्पत्तिहेतु स भवतु सतत व श्रेयसे शान्तिनाथ ॥ १ ॥

इस स्तुति के बाद नीचे का चैत्यवन्दन अथवा कोई भी पूर्वाचार्यकृत चैत्यवन्दन कहना। जैसे—

जय चिंतामणि पार्श्वनाथ जय त्रिभुवन स्वामी।
अष्ट कर्म रिपु जीतीने, पंचमी गति पामी ॥
प्रभु नामे आनंद कंद, सुख संपत्ति लहीए।
प्रभु नामे भव भयतणां, पातिक सब दहीए ॥
ॐ ह्रीं वर्ण जोडी करीने जपीए पारस नाम।
विष अमृत थई परिणमे, लहीए अविचल ठाम ॥

फिर जंकिंचि सूत्र कहना—

जंकिंचि नाम तित्थ, सग्गे पायालि माणुसे लोए जाइं जिण बिंबाइं, ताइं सव्वाइं वंदामि ॥ १ ॥

अर्थ—स्वर्ग पाताल और मनुष्य लोक में जो कोई तीर्थ हों और जितने जिन बिम्ब हों, उन सब को मैं वन्दन करता हूँ।

फिर *नमोत्थुणं (शक्रस्तव) सूत्र बोलना—

नमोत्थुण अरिहंताण भगवंताण आइगराण तित्थयराण सयसंबुद्धाण पुरिसुत्तमाण पुरिससीहाण पुरिसवरपुंडरीआण

नोट—*नमोत्थुणं (शक्रस्तव) रायपसेणी सूत्र में सूर्याभदेव, जीवाभिगमसूत्र में विजयदेव, ज्ञातासूत्र में द्रोपदी ने जिस भांति किया।

पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोग-नाहाणं लोग हिआणं लोगपईवाणं लोग पज्जोअगराणं अभय दयाणं चक्खु-दयाणं मग्ग दयाणं सरण-दयाणं बोहि दयाणं धम्म दयाणं धम्म-देसयाणं धम्म नायगाणं धम्म-सारहीणं धम्म-वर चाउरंत-चक्कवट्टीणं अप्पडिहय-वर नाण-दंसण धराणं वियट्ट छउमाणं जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोअगाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयल-मरूय मणंत-मक्खयमव्वाबाह-मपुणरावित्ति सिद्धि गइ नाम धेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जिअभयाणं। जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संति-ऽणागए काले संपइ अ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि।

अर्थ—नमस्कार हो अरिहन्त भगवन्तों को (१) जो श्रुतधर्म की आदि करने वाले हैं, चतुर्विध श्रमणसंघरूपी तीर्थ की स्थापना करने वाले हैं और स्वयं बोध प्राप्त किए हुऐ हैं। जो पुरुषों में ज्ञानादि गुणों से उत्तम हैं। सिंह-समान निर्भय हैं। उत्तम श्वेत-कमल के समान निर्लेप हैं तथा सात प्रकार की इतिया दूर करने में गंध हस्ती सदृश प्रभावशाली हैं। जो लोक में उत्तम हैं, लोक के नाथ हैं, लोक के हितकारी हैं, लोक के प्रदीप हैं और लोक में प्रकाश करने वाले हैं।

जो अभय देने वाले हैं श्रद्धारूपी नेत्रों का दान करने वाले हैं, मार्ग दिखाने वाले हैं शरण देने वाले हैं और बोधि बीज का लाभ करने वाले हैं।

जो धर्म को समझाने वाले हैं, धर्म की देशना देनेवाले हैं, धर्म के सच्चे स्वामी हैं, धर्म रूपी रथ को चलाने में निष्णात सारथि हैं तथा चार गति का नाश करने, धर्मचक्र के प्रवर्तक चक्रवर्ती हैं। जो

नष्ट नहीं हो ऐसे केवल ज्ञान एवं केवल दर्शन को धारण करने वाले हैं तथा छद्मावस्था से रहित हैं। जो स्वयं जिन बने हुए हैं और दूसरों को भी जिन बनाने वाले हैं जो संसार समुद्र से पार हो गये हैं और दूसरों को भी पार कराते हैं। स्वयं बुद्ध हैं और दूसरों को बोध देने वाले हैं। जो मुक्त हैं और दूसरों को मुक्ति दिखाने वाले हैं

जो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा शिव, स्थिर, व्याधि और वेदना से रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध और अपुनरावृत्ति अर्थात जहां जाने के बाद संसार में वापिस आना नहीं पड़ता, ऐसे सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त किये हुए हैं। ऐसे सर्वभय जीत लिया है ऐसे जिनेश्वर भगवन्त को नमस्कार करता हूँ। और जो भूतकाल में सिद्ध हो गये हैं, जो भविष्यकाल में सिद्ध होने वाले हैं तथा जो वर्तमान काल में अरिहन्तरूप में विद्यमान हैं, उन सब को मन वचन और काया से मैं वन्दन करता हूँ फिर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से जावंति चेइयाइं सूत्र कह कर एक खमासमणा देना—

जावंति चेइयाइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअलोए अ सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥

अर्थ ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मनुष्यलोक में जितने भी चैत्य जिनबिम्ब हैं उन सब को यहां रहता हुआ वहां रहे हुओं को मैं वंदन करता हूँ।

इसके बाद-जावंत के वि साहू "तथा नमोऽर्हत् सूत्र कहना

जावंत के वि साहू—भरहेरवय महाविदेहे सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंड विरयाणं।

अर्थ—भरत-ऐरवत और महाविदेह क्षेत्र में स्थित जो कोई भी साधु, मन, वचन और काया से पाप प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं

करते हुए का अनुमोदन नहीं करते, उनको मैं नमन करता हूँ।

नमोऽर्हत्-सूत्र —नमोऽर्हत्-सिद्धा चार्योपाध्यायसर्वसाधु भ्यः ॥ ६ ॥

अर्थ—अरिहन्त सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं को नमस्कार हो। तदन्तर अरिहन्त परमात्मा का गुणकीर्तनादि रूप स्तवन कहना अथवा "उवसग्गहरं" स्तोत्र कहना।

श्री पार्श्वनाथजी का स्तवन

अन्तरजामी सुण अलवेसर, महिमा त्रिजग तुम्हारो।
सामलीने आव्यो हुँ तीरे, जन्म मरण दुःख वारो।
सेवक अरज करे छे राज, अमने शिव सुख आपो० ॥ १ ॥
सहु कोना मन वांछित पूरो, चिन्ता सहुनी चूरो।
एहवु बिरद छे राज तमारु, केम राखो छो दूरो सेवक० ॥ २ ॥
सेवक चलवलतो देखी मनमा महेर न धरशो।
करुणासागर किम कहेवाशो जो उपकार न करशो सेवक० ॥ ३ ॥
लटपटनु हवे काम नहीं छे, प्रत्यक्ष दरसण दीजे।
धूं आडे धींजु नहि साहिब! पट-पड्या पतीजे सेवक० ॥ ४ ॥
श्री शंखेश्वर मण्डन साहिब! विनतडी अवधारो।
कहे जिनहर्ष दया करी मुजने, भवसागरथी तारो सेवक० ॥ ५ ॥

फिर मुक्ताशुक्ति मुद्रा धारण करके दोनों हाथ मस्तक पर रख "जयवीयराय सूत्र" 'सेवणाआभवमखंडा' तक कह दोनों हाथ पूर्ववत् नीचे उतारकर शेष सूत्र कहना

पणिहाण सुत्त (जयवीयराय सूत्र)

जय वीयराय! जग-गुरु होउ मम तुह पभावओ भयव

भव निव्वेओ मग्गाणुसारिआ इट्ठफलसिद्धी (१) लोग-विरुद्ध चाओ गुरुजण पूआ परत्थकरण च सुह गुरु-जोगो तव्वयण सेवणा आभवमखंडा (२) वारिज्जइ जइ वि नियाण बंधण वीयराय ! तुह समये तहवि मम हुज्ज सेवा-भवे भवे तुम्ह चलणाण (३) दुक्ख-क्खओ कम्मक्खओ, समाहि मरण च बोहि लाभो अ । संपज्जउ मह एअं तुह नाह, पणाम करणेण (४) सर्व मङ्गल माङ्गल्य, सर्व कल्याण-कारण । प्रधान सर्व-धर्माण जैन जयति शासनम् (५) ।

अर्थ— हे वीतराग प्रभो ! हे जगद्गुरो ! आपकी जय हो ! हे भगवन् ! आपके सामर्थ्य से मुझ ससार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो, मोक्षमार्ग में चलने की शक्ति प्राप्त हो, और इष्टफल की सिद्धि हो (जिससे मैं धर्म का आराधन सरलता से कर सकू) । १ ।

हे प्रभो ! मुझे ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि जिससे मेरा मन लोक-विरुद्ध कार्य के करने में प्रवृत्त न हो, धर्माचार्य तथा मातापितादि बड़े व्यक्तियों के प्रति परिपूर्ण आदर भाव का अनुभव करे और दूसरों का भला करने मे तत्पर बने । और हे प्रभो ! मुझे सद्गुरु का योग मिले, तथा उनकी आज्ञानुसार चलने की शक्ति प्राप्त हो । यह सब जहा तक मुझे ससार में परिभ्रमण करना पड़े वहा तक अखण्ड रीति से प्राप्त हो । २ ।

हे नाथ ! आपको प्रणाम करने से दुःख का नाश हो, कर्म का नाश हो, सम्यक्त्व की प्राप्ति हो और समाधि शान्तिपूर्वक मरण हो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो । ४ ।

सर्व मङ्गलों का मङ्गलरूप, सर्व कल्याणों का कारणरूप और सर्व धर्मों में श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन जय को प्राप्त हो रहा है ।

फिर खडे होकर "अरिहन्त चेइयाण" सूत्र कह "अन्नत्थ" सूत्र कह कर एक नमस्कार का काउस्सग्ग जिनमुद्रा में रह कर करना।

अरिहन्त चेइयाण सूत्र

अरिहन्त चेइयाण करेमि काउस्सग्ग । वंदण वत्तियाए पूअण वत्तियाए सक्कार वत्तियाए सम्माण वत्तियाए बोहिलाभ वत्तियाए निरुवसग्ग वत्तियाए सद्धाए मेहाए धिईए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्ग ।

अर्थ— अर्हन्त प्रतिमाओं के आलम्बन से कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूं । वंदन का निमित्त लेकर, पूजन का निमित्त लेकर, सत्कार का निमित्त लेकर सम्मान का निमित्त लेकर [illegible] निमित्त लेकर तथा मोक्ष का निमित्त लेकर [illegible] बढ़ती हुई प्रज्ञा से बढ़ती हुई चित्त की स्वस्थता [illegible] से और बढ़ती हुई अनुप्रेक्षा से मैं कायोत्सर्ग करता हूँ

अन्नत्थ सूत्र

अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं [illegible] जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, [illegible] सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेल [illegible] संचालेहिं, एवमाइएहिं आगारेहिं, [illegible] काउस्सग्गो, जाव अरिहंताणं भगवंताणं [illegible] ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं [illegible]

अर्थ—श्वास लेने से, श्वास छोड़ने से [illegible] आने से, डकार आने से, अपान [illegible]

आने से, पित्त विकार के कारण मूर्च्छा आने से, सूक्ष्मअङ्ग-सञ्चार होने से सूक्ष्म रीति से शरीर में कफ तथा वायु का सञ्चार होने से, सूक्ष्म दृष्टिसञ्चार (नेत्र स्फुरण) आदि होने से, अग्नि स्पर्श, शरीर छेदन अथवा सन्मुख होना हुआ पञ्चेन्द्रियवध, चोर अथवा राजा के कारण और सर्प दंश इन कारणों के उपस्थित होने पर जो काय व्यापार हो उसमे मेरा कायोत्सर्ग भग्न न हो अथवा विराधित न हो। ऐसे ज्ञान के साथ खड़ा रहकर वाणी-व्यापार सर्वथा बन्द करता हूँ तथा चित्त को ध्यान में जोड़ता हूँ। जबतक "नमो अरिहंताणं" पद बोल कर कायोत्सर्ग पूर्ण न करूं, तब तक अपनी काया का सर्वथा त्याग करता हूं।

फिर एक नवकार का 'काउस्सग्ग' पूर्ण कर नमोऽर्हत् सूत्र कह थुई कहना फिर एक खमासमणा देना।

नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्य

थुई (स्तुति)

शंखेश्वर पार्श्व पूजिए, नर भवनो लाहो लीजिए।
मनवांछित पूरण सुरतरु, जय वामा सुत अलवेसरु॥

भाव पूजा के बाद आरती मंगल दीप विधिपूर्वक उतारना।

जिनेन्द्रदेव की आशातना का त्याग —महान् दार्शनिक १४४४ ग्रंथों के रचयिता श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी ने संबोध प्रकरण में कहा है कि "श्री जिनेन्द्रप्रभु की विधि पूर्वक की हुई पूजा स्वर्ग का फल तथा परंपरा से [संसार के पार पाने रूप] शिवसुख फल को भी देती है और अविधि से की हुई पूजा नि शूक चित्त¹ जीवों को दुर्गति का फल देती है। श्री जिनेन्द्र प्रभु की आशातना का त्याग, सिद्धान्त के

---

¹ विधि का अनादर यहाँ नि शूकचित्त जानना।

अनुसार सामर्थ्य छुपाये बिना भक्ति, विधिमार्ग का अनुराग, अविधि का त्याग, इन चार अर्थ पूर्वक की हुई पूजा बहुत फल देने वाली होती है।

श्री जिन भवन (चैत्य) के विषय में अवज्ञा[1] पूजा आदि में अनादर[2] तथा भोग[3] दुष्प्रणिधान[4] और अनुचित प्रवृत्ति[5] यह पाच मुख्य आशातनाएँ हैं।

(१) श्री जिनेन्द्रप्रभु के सामने पलाठी लगा कर बैठना, प्रभु को पीठ देकर बैठना, सीटी बजाना, पैर पसारना, खराब आसन से बैठना यह अवज्ञाआशातना (२) प्रभु पूजा के लिये जैसा तैसा वेष पहनना, जैसा मन मे आवे उस प्रकार और किसी भी समय पूजा आदि शून्य चित्त से करना, यह अनादर आशातना (३) जिन भवन में ताम्बूल आदि खाना, अशुचि करना इस प्रकार ज्ञानादि आचारों की अशातना करे वह भोग आशातना, जिन भवन म वर्जनीय है। (४) श्री जिन भवन म विषय राग द्वारा, द्वेष द्वारा, अथवा मोह द्वारा मनोवृत्ति दूषित हो वह दुष्प्रणिधान आशातना कहलाती है। (५) चोर आदि पकडना, रणसग्राम करना, रुदन करना, विकथा करना, जानवर बाधना, पकाना इत्यादि गृहकार्य तथा गाली देना, वैद्यक करना, व्यापार इत्यादि कृत्य चैत्य म करना अनुचित वृत्ति आशातना है, उसका त्याग करना। धर्मसग्रह ग्रन्थ में सख्या की अपेक्षा जघन्य दश, मध्यम चालीस और उत्कृष्ट चौरासी आशातना बतलाई हैं।

चैत्य सम्बधी जघन्य दश-आशातना

श्री जिन चैत्य में (१) ताम्बूल खाना (२) पानी पीना (३) भोजन करना (४) जूते पहने रखना (५) स्त्री सेवन करना (६) शयन करना (७) थूकना या श्लेष्म फेंकना (८) पेशाब करना (९) मल त्याग करना (१०) जुआ खेलना। यह दश आशातना अवश्य वर्जनीय है।

चैत्य सम्बधी प्रथम चालीस आशातना

श्री जिन मंदिर में (१) पेशाब करना (२) मल त्याग करना (३) सुरा आदि पीना (४) पानी पीना (५) भोजन करना (६) शयन करना (७) स्त्री सेवन करना (८) ताम्बूल खाना (९) थूक श्लेष्म फेंकना (१०) जुआ खेलना (११) शरीर कपड़ा आदि में से जू तथा माकड़ आदि निकालना (१२) राज कथादि विकथाएँ कहना (१३) पलाठी मार कर बैठना (१४) लम्बे पैर पसारना (१५) परस्पर विवाद कलह करना (१६) मसकरी करना (१७) मत्सर करना (१८) जिन भवन के सिंहासन, पाट, पाटला आदि का उपयोग स्वयं करना (१९) मस्तक के केश सजाना आदि शरीर की शोभा करना (२०) छत्र धारण करना (२१) हाथ में शस्त्र रखना (२२) शिर पर मुकुट धारण करना (२३) स्वयं के चामर कराना (२४) ऋणी को मंदिर में पकड़ना (२५) युवती स्त्रियों के साथ विकार पूर्वक हसना बोलना (२६) भांड के समान हलके मनुष्य की भांति खराब वर्तन करना (२७) मुख कोष बांधे बिना पूजन करना (२८) मलिन शरीर (बिना नहाये) तथा अशुद्ध वस्त्र से पूजन करना (२९) मन को पूजा में एकाग्र नहीं रखना (चलायमान करना) (३०) पुष्प आदि सचित्त वस्तु शरीर पर पहने रखना (३१) पहने हुए अचित्त आभरण आदि मंदिर में जाते पहले या वहां गये पीछे निकाल देना [पहने हुए अलंकारादिसहित जावे] (३२) उत्तरासंग जुड़ा हुआ या फटा हुआ रखना या बिलकुल नहीं रखना (३३) श्री जिनप्रतिमा के दर्शन होते ही दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम नहीं करना (३४) श्री जिनेश्वर के दर्शन करते हुए भी पूजा नहीं करना अथवा पूजा करने की सम्पत्ति सामग्री की अनुकूलता होते हुए भी पूजा नहीं करना (३५) खराब पुष्प चंदन, केसर आदि से पूजा करना (३६) पूजादि कार्य अनादर पूर्वक करना (३७) श्री जिनेश्वरदेव के विरोधियों को (सामर्थ्य होते) निंदादि करते नहीं रोकना

(३८) चैत्य द्रव्य का नाश होता हो और स्वयं म सामर्थ्य और अधिकार हो फिर भी उसकी उपेक्षा करना (३६) जूते पहने रखना (४०) द्रव्य पूजा शेष होते हुए पहले ही चैत्य वन्दनादि भाव पूजा करना। इन चालीस मध्यम आशातनाओं का वर्णन महर्षि हरिभद्रसूरिजीने सबोधप्रकरण देवाधिदेवाधिकार मे दिया है। जिन चैत्य में इनका त्याग करना चाहियें।

श्री जिन मंदिर की आशातनाए मात्र गृहस्थ के लिये ही वर्जनीय हैं ऐसा नहीं परन्तु साधु के लिये भी ये आशातनाऐं वर्जनीय है —

"आसायणा उ भवभमण-कारण इय विभावि उ जन्णो।
मलमलिणु (ण) त्ति जिण-मदिरंमि निवसति इइ समओ।

भावार्थ—जिनेश्वर की (चैत्य में होती) आशातनाएँ ससार भ्रमण कराने वाला जान कर साधु अपने शरीर, वस्त्रादि को मैल से मलिन होने के कारण जिन मन्दिर मे (चैत्यवन्दनादि प्रयोजन पूर्ण होने से ज्यादा) रहते नहीं। ऐसा आगम मे बतलाया है।

॥ इति ॥

—

:: गुरु-वंदनविधि ::

गुरु वंदन का महत्व—गुरुवंदन भाष्य में कहा है कि—

विणओवयार माणस्स भंजणा पूअणा गुरुजणस्स।
तित्थयराण य आणा, सुअधम्माराहणाकिरिया ॥

अर्थ—गुरू को वंदन करने से अनुक्रम से विनयोपचार, मान का खंडन, गुरुजन की पूजा, तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन, श्रुतधर्म की आराधना तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है।

गुरु वंदन तीन तीन प्रकार के हैं —

"गुरुवंदणमह तिविहं, तं फिट्टाछोभ २ बारसावत्तं।
सिरनमणाइसु पढम, पुण्णखमासमणदुगि बीअं ॥ १ ॥

भावार्थ—गुरू वन्दन तीन प्रकार का कहलाता है। एक फिट्टा वंदन, दूसरा छो (थो) भवंदन तीसरा द्वादशावर्त्तवंदन, उनमें पहला मस्तक आदि नमन करने से, दूसरा (शरीर के पाचों अंग) पूर्ण दो खमासमण देने से, तीसरा दो वंदणा (द्वादशा वर्त) से होता है।

(१) फिट्टावंदन—संघ में परस्पर करना, अर्थात् साधु साधु को परस्पर, साध्वी साध्वी को परस्पर, श्रावक सर्व साधु साध्वी तथा श्रावक श्रावक परस्पर और श्राविका श्राविका परस्पर, श्राविका साधु आदि चारों को (और साध्वी साधु को तथा साध्वी को) फिट्टावंदन करे।

(२) थोभवंदन—साधु बड़े साधु को, साध्वी बड़ी साध्वी को तथा लघु पर्याय वाले साधु को भी तथा श्रावक साधु को और श्राविका साधु साध्वी को पचाग वंदन करे। इस प्रकार खमासमणापूर्वक गुरुवंदन साधु साध्वी को किया जाता है।

(३) द्वादशावर्तवंदन—यह वंदन साधु साध्वी, श्रावक श्राविका द्वारा मात्र पदस्थों को ही किया जाता है। वह भी अपदस्थ साधु सर्व पदस्थों को तथा पदस्थ बड़े पदस्थों को करें।

:: गुरु वदन ::

मस्तक, दो हाथ, दोनों घुटने इन पाचों अङ्गों से भूमि स्पर्श करते हुए बोलना—

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउ, जावणिज्जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि ॥

फिर खडे होकर गुरु की सुखशाता, पृच्छा कर (दो वार खमा० देव)

इच्छकार ! सुह-राई ? (सुह देवसि ?) सुख तप ? शरीर-निराबाध ? सुखसंजम-यात्रा निर्वहो छो जी ? स्वामि शाता है जी ! भात पानी का लाभ दजाजी ।

फिर भूमि पर मस्तक टेककर बायें हाथ में मुहपत्ती से अगर दुपट्टे से मुख आच्छादित करके तथा दाया हाथ गुरु के सामने रखकर अथात् हाथ को भूमि पर स्थापित करके बोले—

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! अब्भुट्ठिओ मि अब्भितर-देवसिअं (राइअं) खामेउं ।

इच्छ, खामेमि देवसिअं (राइअं) जं किंचि अपत्तिअं, पर पत्तिअं, भत्ते, पाणे, विणए, वेयावच्चे, आलावे, संलावे, उच्चा सणे, समासणे, अंतरभासाए उवरिभासाए । जं किंचि मज्झ विणय परिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह, अहं न जाणामि, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

वंदन के ३२ दोष

१ अनादृतदोष—बिना उत्सुक चित्त वंदन करना।

२ स्तब्धदोष—आठ मदों के वश में होकर वंदन करना।

३ पविद्धदोष—अधूरी क्रिया-वंदन छोड़कर चले जाना।

४ परिपिंडितदोष—सबको सम्मिलित वंदन करना। सूत्र के उच्चारण में अक्षर, पद और संपदा को यथास्थान अटके बिना अस्पष्ट सम्मिलित उच्चारण करना।

५. टोलगतिदोष—आगे पीछे कूदते २ वन्दन करना।

६ अंकुशदोष—अपने ओघे या चरवला को दोनों हाथ से अंकुश की तरह पकड़ कर वंदन करना।

७ कच्छप रिंगितदोष—बिना कारण वंदन करते आगे पीछे खिसकना।

८ मत्स्योद्वृत्तदोष—मत्स्य पानी में एकदम नीचे जाता है और ऊपर आता है, एकदम पीछे फिरता है, इस प्रकार वंदन करना।

९ मन प्रदुष्टदोष—मन में प्रद्वेष रखकर वंदन करना।

१० वेदिकाबद्धदोष—वंदन में आवर्त देते समय दोनों हाथ अथवा ढीचण विधिपूर्वक नहीं रखना।

११ भयदोष—'वंदन नहीं करूँगा तो संघ, समुदाय से दूर करेंगे' आदि भय से वंदन करना।

१२. भजतदोष—वंदनादि सेवा करूंगा, इससे गुरु भी मेरी सेवा करेगा।

१३ मैत्रीदोष—आचार्यादि को वंदन करने से मैत्री होगी।

१४ गौरवदोष—मैं गुरु वन्दन विधि में कुशल हूँ। दूसरों को बतलाने के लिये विधिपूर्वक आवर्त आदि विधि साचवे।

१५ करणदोष—ज्ञानादि सिवाय वस्त्र, पात्र आदि वस्तु प्राप्त करने के लिये वन्दन करना।

१६ स्तेनदोष—स्तेन अर्थात चोर की भांति दूसरा नहीं देखे इस तरह वंदन करना।

१७ प्रत्यनीकदोष—गुरु व्यग्र चित्तवाले, अथवा बैठे हों प्रमादवश हों आहार निहार करते हों अथवा करने की इच्छावाले हो। उस समय पर वदन करना।

१८ रुष्टदोष—गुरु रोषायमान हों तब वन्दन करना अथवा किसी कारण खुद को क्रोध हुआ हो उस समय क्रोध युक्त वदन करना।

१९ तर्जनादोष—'काष्ठ पुतली की तरह तुम को वदन करने से तुम खुश नहीं होते हो या नहीं करने से नाराज नहीं होते हो तुमको वन्दन करने से क्या विशेष है? एम तर्जना करके वदन करना।

२० शठदोष—यह भक्त है इस तरह लोगों में विश्वास पैदा करने के लिये माया से वदन करना।

२१ हीलितदोष—अवज्ञापूर्वक वदन करना।

२२ विपरीत कुचितदोष—आधा वन्दन कर बीच में देशकथादि करना।

२३ दृष्टादृष्टदोष—बहुत साधु वदन की आड़ में वंदन न करना। अथवा अंधेरा हो तब वदन न करना।

२४ शृंगदोष—वन्दन में 'अहो काय" आदि बोलकर आवर्त करते दोनों हथेली ललाट के मध्य में नहीं लगाकर ललाट से अन्य जगह लगाना।

२४ करदोष—वंदन रूपी कर अरिहंत द्वारा फरमाया हुआ मान कर अवश्य चुकाना ऐसा मान कर वंदन करना।

२६ मुक्तदोष—वंदन रूपी कर से कब छुटकारा मिलेगा ऐसा मान कर वंदन करना।

२७ आश्लिष्टानाश्लिष्ट दोष—वंदन में जो आवर्त लेने के होते हैं, उसमें रजोहरण और मस्तक को स्पर्श न करे। न्यूनाधिक करें।

२८ न्यूनदोष—वंदनसूत्र मे अक्षरों का पूर्ण उच्चारण न करना।

२९ उत्तरचूडादोष—वंदन पूर्ण किये पीछे मोटी आवाज़ से "मत्थएण वंदामि" ज्यादा बोलना।

३० मूकदोष—वन्दन सूत्र के अक्षर मन में बोलना।

३१ ढड्ढरदोष—सूत्र का उच्चार मोटी आवाज़ से करना।

३२ चुडलिदोष—ओघे को किनारे से पकड़ कर घुमाते हुए वंदन करना।

गुरू महाराज को वंदन करते यह ३२ दोषों का अवश्य त्याग करना चाहिये।



गुरू प्रत्ये ३३ आशातना

(१) गुरु के आगे बराबर चलना।
(२) ,, बाजू में चलना।
(३) ,, पीछे बिलकुल नजदीक चलना।
(४) ,, आगे खड़ रहना।
(५) ,, बाजू म खड़े रहना।
(६) ,, पीछे निकट खड़ रहना।

(७) गुरू के आगे बैठना।

(८) ,, बाजू में बैठना।

(६) , पाछे निकट बैठना।

(१०) गुरू के पहले स्थंडिल भूमि (बडीनीति) साथ जाने पर पहले हाथ पैर की शुद्धि करे। आहारादि समय गुरु से पहले स्वयं मुख शुद्धि करना।

(११) बाहर से गुरू के साथ आते हुवे पहले गमणागमणे की आलोचना करनी।

(१२) गुरू रात्रि को पूछे-कौन निद्रा लेता है? कौन जागता है? लेकिन उसका उत्तर नहीं देना।

(१३) किसी आये हुए गृहस्थादिक को गुरू के बुलाने के पूर्व खुद बातचीत करना।

(१४) गोचरी लाकर प्रथम दूसरे साधु के आगे आलोचना करे बादमें गुरू के आगे आलोचना करे।

(१५) लाई हुई गोचरी गुरू को दिखाने के पहले दूसरे साधु को दिखाना।

(१६) लाई हुई गोचरी खाना काम में लाने के लिये गुरू से पहले दूसरे साधु को निमन्त्रण करना।

(१७) आहार लाकर गुरु की आज्ञा बिना स्वयं दूसरे साधु को मनमानी गोचरी देवे।

(१८) आहार थोड़ासा गुरू को देकर स्निग्ध और मधुर आहार खुद काम में लेवे।

(१९) गुरू के बुलाने पर नहीं बोलना। (दिन के समय)

(२०) गुरू के साथ कठोर स्वर से बोलना।

(२१) गुरू के बुलाने पर आसन पर बैठे बैठे प्रत्युत्तर देना।

(२२) गुरू के बुलाने पर "क्या है'? कहना।

(२३) गुरू को 'पूज्य आदि शब्दों से संबोधित करने के बदले 'तू' आदि बोलना।

(२४) गुरू शिष्य को कहे 'बीमार साधु की वैयावच क्यों नहीं करते?" तो जवाब में कहना— तुम खुद क्यों नहीं कर लेते?"

(२५) गुरू कथा कहते हों जब "अहो आपने यह वचन उत्तम कहा' इत्यादि प्रशंसा नहीं करना।

(२६) गुरू धर्म कथा कहते हों तब इसका अर्थ इस प्रकार नहीं है' इत्यादि कहना।

(२७) गुरू धर्मकथा कहते हों तब 'यह कथा मैं पीछे से अच्छे ढंग से सुनाऊंगा' इस तरह कथा भंग करना।

(२८) गुरू धर्मकथा कहते हों उस वक्त कहना "अब यह कथा छोड़ दो"

(२९) गुरू ने कथा कहने के बाद अभी पर्षदा उठी नहीं हो अपनी चतुराई दिखाना आदि।

(३०) गुरू की शय्या और संथारा को पैर लगाना आदि।

(३१) गुरू के शय्या तथा संथारा पर बैठना खड़े रहना।

(३२) गुरू से अधिक ऊंचे आसन पर बैठना।

(३३) गुरू से आगे या बराबर आसन पर बैठना।

:: देवद्रव्यादि की व्यवस्था ::

शास्त्रीय मार्गदर्शन

चैत्यकार्य का अधिकारी—

"अहिगारी य गिहत्थो, सुहसयणो वित्तम जुओ कुलजो ।
अक्खुद्दो धिइबलिओ, मइम तह धम्मरागी य ॥ ५ ॥
गुरु पूजा करणरइ, सुस्सूसाइ गुणसंगओ चेव ।
णायाहिगयविहा णस्स धणियमाणापहाणो य ॥ ६ ॥
—द्रव्यसप्ततिका

भावार्थ—(१) अनुकूल कुटुम्बवाला, (२) धनवान अर्थात् न्यायोपार्जित धनवाला (३) सत्कार करने योग्य, (४) कुलवान् (५) उदार दाता, (६) धैर्यबल युक्त (७) शास्त्र की आज्ञा के आधीन रहने वाला आगमपरतन्त्र, (८) धर्मरागी (९) गुरुसेवा में तत्पर (१०) शुश्रूषादि बुद्धि के आठ गुणों से युक्त अर्थात् विवकी (११) चैत्य द्रव्यादिक की वृद्धि की विधि का जानने वाला, प्रस्तुत विषयक के शास्त्रों के विधानों का ज्ञाता, (१२) बुद्धिमान। ऐसा गुणयुक्त गृहस्थ चैत्यकार्य का अधिकारी (व्यवस्थापक) हो सकता है।

चैत्य कार्य के विशेष अधिकारी—

मग्गाणुसारिपाय, सम्मदिट्ठी तहेव अणुविरई ।
एएऽहिगारिणो इह, विसेसओ धम्मसत्थंमि ॥ ७ ॥
—द्रव्यसप्ततिका

भावार्थ—मार्गानुसारी, अविरत सम्यग् दृष्टि और देशविरति यह धर्मशास्त्र के अनुसार प्राय देवादिद्रव्य की वृद्धि के विशिष्ट अधिकारी जानना।

देवद्रव्य [जिनमंदिर व जिनबिम्बद्रव्य]—भक्ति आदि विशिष्ट निश्चयवाली बुद्धि द्वारा जिस काल में धन धान्यादिक जो वस्तु देवा-

दिक के हेतु निर्णयपूर्वक धारी गई अथवा समर्पित की गई यह देव द्रव्य।

(क) जिनबिम्ब की उपासना के लिये किसी भी व्यक्ति द्वारा भक्ति से समर्पित द्रव्य जिन बिम्ब द्रव्य है। यह द्रव्य जिन प्रतिमा के रक्षा कार्य, नवीन बिम्ब भराने, बिम्ब के लेप आगी आदि मे व्यय किया जा सकता है। यह द्रव्य जिन बिम्ब के कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य मे खच नहीं किया जा सकता है।

(ख) प्रभु के पाच कल्याणकों के निमित्त भक्ति पूर्वक बोला गया द्रव्यादि देव द्रव्य है। प्रभु पूजा, आरती, मगल दीपक, अंजन शलाका प्रतिष्ठा महोत्सव उपधान की प्रवेशशुल्क, उपधान की माला, तीर्थमाला आदि के रूप म बोला गया द्रव्य भी देवद्रव्य है। इस द्रव्य का उपयोग प्राचीन चैत्य के जीर्णोद्धार नूतन जिनगृह के निर्माण, जिन चैत्य के रक्षा कार्य वगैरह कार्यों मे किया जा सकता है। देवद्रव्य में से महापूजा (शान्तिस्नात्र आदि) हो सकती है श्राद्धविधि में कहा है। श्रावक को यथे यहा तक अपने निजि द्रव्य से श्री जिनेश्वर भगवान् की पूजा भक्ति करनी चाहिये। जिस स्थान पर श्रावकों का घर नहीं है, तीर्थ भूमि है या स्थानिक सघ प्रभु पूजा म (उपासना) खर्च करने की शक्तिवाला नहीं है उस जगह पर रहे हुए जिन चैत्य की पूजा देव द्रव्य से भी हो सकती है। देव द्रव्य श्रावकों को निजी किसी भी उपयोग में लाने का शास्त्रों में निषध किया है। श्री श्राद्धदिन कृत्य सूत्र में कहा है कि "जो प्राणी देव द्रव्य का या देव के उपकरणादिक का विनाश करता है। भक्षण करता है अथवा अन्य द्वारा भक्षण होते देख उसकी उपेक्षा करता है, अंगउद्धार देते मना नहीं करता है वह प्राणि बुद्धिहीन होता है और पाप कर्म से लेपायमान होता है" अन्य धर्म शास्त्र में भी बतलाया है कि देवद्रव्य भक्षण करने वाला जीव अनन्त ससारी होता है। श्री श्राद्धदिन कृत्य म आगे कहा है कि "जो देवद्रव्य की रक्षा करता है वह परित्तसंसारी-अल्पससारी होता है।

साधारण द्रव्य—सातों क्षेत्र के लिए भेंट की गई एक रकम यह साधारण द्रव्य है। लेकिन आज कल शुभ कार्य मात्र के लिए उपयोग करने के हेतु एकत्रित किया गया द्रव्य साधारण द्रव्य कहा जाता है। साधारण खाते में समर्पित किये द्रव्य का सर्व धार्मिक कार्यों में उपयोग हो सकता है। सात क्षेत्रों के साधारण का उपयोग संघ की आज्ञा से सात क्षेत्रों (जिन बिम्ब जिन भवन ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका) के लिए उपयोग किया जा सकता है। लेकिन अनुकम्पा में नहीं दिया जा सकता है। साधारण द्रव्य श्रावक को भी श्री संघ की बिना आज्ञा काम में लाना नहीं कल्पता है।

ज्ञान द्रव्य—आगम धर्मशास्त्र की उपासना के हेतु समर्पित किया द्रव्य, प्रतिक्रमण सूत्रों का बोली कल्पसूत्र की भक्ति निमित्त बोला गया द्रव्य, पुस्तक पूजन द्रव्य ज्ञान द्रव्य है। यह द्रव्य साधु साध्वी के पठन पाठन में अजैन पंडित को वेतनादि देने में ज्ञान भंडार के लिये सूत्रादिक खरीदने में उपयोग किया जा सकता है। यह द्रव्य धार्मिक सूत्र (आगम) शास्त्र लिखाने, छपवाने में खर्च किया जा सकता है। इस द्रव्य का उपयोग व्यवहारिक शिक्षा में नहीं हो सकता है। यह द्रव्य भी देव द्रव्य की भांति श्रावकों को नहीं कल्पता है अर्थात् श्रावकों के उपयोग में नहीं आ सकता है। ज्ञान शब्द का अर्थ जैन शास्त्रों में सम्यग् ज्ञान बताया गया है।

। द्रव्य—गुरु की भक्ति (पूजा) के समय समर्पित (अर्पण) हुआ द्रव्य गुरु द्रव्य है। यह द्रव्य चैत्यों के जीर्णोद्धार तथा नूतन चैत्य निर्माण में उपयोग में आता है। श्री कुमार पाल राजा प्रतिदिन एक सौ आठ स्वर्ण कमलों से श्री हेमाचार्य की पूजा किया करते थे।

जीव दया द्रव्य—श्रावकों द्वारा निराधार पशु, पक्षी, (खेचर, भूचर आदि) के जीवन संरक्षण के लिये इकट्ठा या अर्पण किया हुआ।

द्रव्य है। यह द्रव्य पशु पक्षी के अतिरिक्त अन्य मनुष्य के काम में नहीं आ सकता है।

देव द्रव्य की वृद्धि करने वाला —श्रीमद् हरिभद्रसूरि म० ने सबोध प्रकरण म देवद्रव्यादि के बारे मे उल्लेख किया है। जिन प्रवचन की वृद्धि करने वाला और ज्ञान दर्शनादि गुणों का प्रभावक तथा देव द्रव्य का रक्षण करने वाला जीव परित्तसंसारी (अल्पससारी) होता है।

देवद्रव्य की उपेक्षा—जिन प्रवचन की वृद्धि करने वाला और ज्ञान दर्शनादि गुणों का प्रभावक होता हुआ भी जो देवद्रव्य की उपेक्षा—अनादर करने वाला हो वह जीव दुर्लभ बोधि होता है। जिन प्रवचन की वृद्धि करने वाला और ज्ञान दर्शनादि गुणों का प्रभावक होने पर भी जो देवद्रव्य का भक्षण करने वाला हो, वह जीव अनन्त ससारी होता है। चैत्य द्रव्य और साधारण द्रव्य को भी जो विमूढ मनवाला जीव भक्षण करता है वह तिर्यंचगति में भ्रमण करता है और सदा अज्ञान रहता है।

आज्ञा विरुद्ध देव द्रव्य की वृद्धि करने वाला —अज्ञानी तथा जिनेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध देव द्रव्य की वृद्धि करने वाला जीव मोह द्वारा मूढ होकर भव समुद्र में डूबता है।

॥ इति ॥



श्री जिनेन्द्र-पूजा में आवश्यक सावधानी

१ पूजा करने के लिए स्नान छाने हुए अल्प पानी से करें।

२ परमात्मा की प्रतिमा से अपना मस्तक न लगाएं।

३ गर्भ द्वार में मुख कोष बाँधकर प्रवेश करें।

४ बहुत भक्ति भाव से विधिपूर्वक अभिषेक करें।

५ बाल कूचा (खस-कूची) का उपयोग न करें। गीले वस्त्र से प्रतिमाजी पर से केसर उतारें। जहां केसर रह गया हो वहां बाल कूची का इस ढंग से उपयोग करें, कि जैसे अपनी आत्मा से मैल दूर करते हैं।

६ अभिषेक पूर्ण होते ही परमात्मा की प्रतिमा अंगलूछन से स्वच्छ करें।

७ तांबे के सरीया का उपयोग न करें।

८ पुरुष भगवान के दाहिनी ओर खड़े रहकर दर्शन पूजा करें।

९ स्त्री भगवान के बायीं ओर खड़े रहकर दर्शन पूजा करें।

नोट —परमात्मा की आशातना करने वाली आत्मा अनन्त दुःख पाती है। बाल कूची जोर जोर से घिसने से भगवान के नाक आंख कान वगैरह अङ्ग घिस जाते हैं। इस लिए बाल-कूची का तो उपयोग ही अति अल्प करना चाहिए।